सूचना

आगामी फाल्गुण शुक्ला द्वितीया, रविवार २ मार्च १९३० को श्रीरामकृष्ण परमहंस देवकी पुण्य जन्म तिथि भारतवर्ष तथा विदेश के सभी केन्द्रों में मनाई जायगी और सार्वजनिक उत्सव रविवार ९ मार्च को बड़े समारोहके साथ मनाया जायगा।

गत २१ जनवरी को श्रीरामकृष्ण मिशनने भारतवर्ष तथा विदेशी सभी केन्द्रों में पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द जीकी पुण्य जन्मतिथि बड़े समारोह के साथ मनाई गई। दरिद्र नारायणों को भोजन कराये गये और भक्तोंको प्रसाद बांटे गये।

स्वामी विवेकानन्दजी ने अपने गम्भीर मार्मिक भाषणसे १८९३ की विश्व धर्म महासभा Parliament of Religions. में हिन्दू धर्म की जो विजय वैजयन्ती फहराई थी, उसी के प्रभाव से गत जनवरी मासमें स्वामी ज्ञानेस्वरानन्द जीके उद्योग से शिकागो में एक वेदान्त केन्द्रकी स्थापना हुई है। स्वामी जीके सञ्चालन में इस केन्द्र के द्वारा हिन्दू धर्म के प्रचार के पर्याप्त प्रयत्न होंगे। आप बहुत ही उद्यमशील और पटु कार्यकर्ता हैं। हम इस केन्द्र को और समुन्नत रूप में देखने के अभिलाषी हैं।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ —गीता।

वर्ष ८] सौर पौष, सम्वत् १९८६ [अङ्क १२

रामकृष्णवचनामृत

चौबीसवां परिच्छेद।

(१)

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वरके काली मन्दिर में उसी पूर्व-परिचित कमरे में विश्राम कर रहे हैं। आज शनिवार है, १३ जून १८८५, जेठ की शुक्ला प्रतिपदा; जेठ की संक्रान्ति। दिन के तीन बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण भोजन के बाद चारपाई पर जरा विश्राम कर रहे हैं।

पंडितजी फर्शपर चटाई में बैठे हुए हैं। शोक से विह्वल एक ब्राह्मणी कमरे के उत्तर तरफवाले दरवाजे के पास खड़ी हुई है। किशोरी भी हैं। मास्टर ने आकर प्रणाम किया। साथ द्विज आदि हैं। अखिल बाबू के पड़ोसी भी बैठे हुए हैं। उनके साथ एक छोकड़ा अभी पहले पहल आया हुआ है।

श्रीरामकृष्ण कुछ अस्वस्थ हैं। गले में गिलटी पड़ गई है, कुछ जुकाम भी हो गया है। गले की बीमारी बस यहीं से शुरू होती है।

ज्यादा गरमी पड़ने के कारण मास्टर का भी शरीर अस्वस्थ रहता है। श्रीरामकृष्ण के दर्शनों के लिये वे लगातार दक्षिणेश्वर नहीं आ सके।

श्रीरामकृष्ण। यह लो तुम तो आ गये। बड़ा अच्छा बेल है। तुम कैसे हो?

मास्टर। जी, पहले से अब कुछ अच्छा हूं।

श्रीरामकृष्ण। बड़ी गरमी पड़ रही है! कुछ कुछ बर्फ खाया करो।

"गरमी से मुझे भी बड़ा कष्ट मिल रहा है। गरमी में कुलपी-बर्फ—यह सब बहुत खाया गया। इसीलिये गले में गिल्टी पड़ गई है। गले से बड़ी बदबू निकल रही है।

"मां से मैंने कहा, मां, अच्छा कर दो, अब कुल्पी बर्फ न खाऊंगा।

"इसके बाद यह भी कहा है कि बर्फ न खाऊंगा।

"मां से जब कि कह दिया है कि अब न खाऊंगा तो खाना अवश्य ही न होगा। परन्तु एकाएक भूल भी ऐसी हो जाती है। कहा था, रविवार को मछली न खाऊंगा, इस समय एक दिन भूल से खा ली।"

"परन्तु जानते में भूल नहीं होने पाती। उस दिन गेडुआ लेकर एक आदमी को झाऊतले की ओर आने के लिये मैंने कहा। उस समय वह जंगल गया था। इसलिये एक दूसरा ले आया। मैंने जंगल से आकर देखा, एक दूसरा गेडुआ लिये हुए खड़ा था। अब क्या करूं? हाथ में मिट्टी लगाये खड़ा रहा जबतक उसीने आकर पानी नहीं दिया।

माता के पादपद्मों में फूल चढ़ाकर जब मैं सब त्याग करने लगा तब कहा, मां, यह लो अपनी शुचिता और यह यह लो अशुचिता; यह लो अपना धर्म और यह लो अधर्म; यह लो अपना पाप और यह लो पुण्य; यह लो अपना भला और यह लो बुरा,—मुझे शुद्ध भक्ति दो। परन्तु यह लो अपना सत्य और यह अपनी मिथ्या, यह मैं नहीं कह सका!"

एक भक्त बर्फ ले आये हैं। श्रीरामकृष्ण बार बार मास्टर से पूछ रहे हैं, क्यों जी, खाऊं क्या?

मास्टर ने विनयपूर्वक कहा, तो आप माता की आज्ञा बिना लिये न खाइये। श्रीरामकृष्ण ने अन्त में बर्फ नहीं खाई।

श्रीरामकृष्ण। शुचिता और अशुचिता का विचार भक्ति और भक्त के लिये है, यह ज्ञानी के लिये नहीं। विजय की सास ने कहा, मेरा क्या हुआ? अब भी तो मैं सबका जूठन नहीं खा सकी। मैंने कहा, क्या सबका जूठन खानेही से ज्ञान होता है? कुत्ते जो पाते हैं, वही खा लेते हैं, इसलिये क्या कुत्ते को बड़ा ज्ञानी कहें?

"(मास्टर से) मैं पांच तरह की तरकारियां इसलिये खाया करता हूं कि सब तरह की रुचि रहे—कहीं एक ही ढर्रे में पड़ गया तो इन्हें (भक्तों को) छोड़ न देना पड़े।

"केशवसेन से मैंने कहा, और भी बढ़ कर अगर बातचीत की जायगी तो तुम्हारा यह दल फिर न रह जायगा। ज्ञानी की अवस्था में दल-बल सब मिथ्या स्वप्नवत् है।

"जब मैंने मछली खाना छोड़ा तब पहले पहल मुझे कष्ट होता था। पीछे से उतना कष्ट नहीं होता था। पक्षी का घोंसला अगर कोई जला देता है, तो उड़ता फिरता है, आकाश में आश्रय लेता है। देह, संसार अगर यह सब मिथ्या भासित हो, तो आत्मा समाधिमग्न हो जाता है।

"पहले यही ज्ञानी की अवस्था थी। आदमी नहीं अच्छे लगते। हाटखोला में एक ज्ञानी है या अमुक स्थान पर एक भक्त है, इस तरह की बात मैंने सुनी; फिर कुछ दिनों में सुना, वह तो गुजर गया! इसीलिये आदमी अच्छे नहीं लगते थे। फिर उन्होंने (जगदम्बा) मन को उतारा, भक्ति और भक्तों में मनको लगा दिया।"

मास्टर अवाक हैं। श्रीरामकृष्ण की अवस्थाओं के बदलने की

बातें सुन रहे हैं। अब श्रीरामकृष्ण यह बतला रहे हैं कि ईश्वर आदमी होकर क्यों अवतार लेते हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)। मनुष्य-लीला क्यों है, जानते हो ? इसके भीतर उनकी बातें सुनने को मिलती हैं। इसके भीतर उनका विलास है, इसके भीतर वे रसों का स्वाद लेते हैं।

"और सब भक्तों में थोड़ा थोड़ासा उन्हींका प्रकाश है। जैसे किसी चीज को खूब चूसने पर कुछ रस मिलता है, फूल को चूसने पर कुछ मधु। (मास्टर से) तुम यह बात समझे ?

मास्टर। जी हां मैं खूब समझा।

श्रीरामकृष्ण द्विज के साथ बातचीत कर रहे हैं। द्विज की उम्र १५।१६ साल की है। उसके पिता ने अपना पुनर्विवाह किया है। द्विज प्रायः मास्टर के साथ आया करते हैं। श्रीरामकृष्ण उनपर स्नेह करते हैं। द्विज कह रहे हैं कि उनके पिता उन्हें दक्षिणेश्वर नहीं आने देते।

श्रीरामकृष्ण (द्विज से)। क्या तेरे भाई भी मुझे अवज्ञा की दृष्टि से देखते हैं ?

द्विज चुप हैं।

मास्टर। संसार की कुछ ठोकरें खानेपर जिनमें कुछ अवज्ञा है भी, वह दूर हो जायगी।

श्रीरामकृष्ण। विमाता है, धक्के तो मिलते ही होंगे।

सब कुछ देर चुप रहे।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)। पूर्ण के साथ इसे तुम मिला क्यों नहीं देते ?

मास्टर। जी हां, मिला दूंगा। (द्विज से) पेनेटी जाना।

श्रीरामकृष्ण। हां, इसीलिये मैं सब से कहा करता हूं—इसे भेज देना—उसे भेज देना। (मास्टर से) तुम जाओगे या नहीं ?

श्रीरामकृष्ण पेनेटी के महोत्सव में जायंगे। इसीलिये भक्तों से वहां जाने की बात कह रहे हैं।

मास्टर। जी हां, इच्छा तो है।

श्रीरामकृष्ण। नाव बड़ी किराये की जायगी। वह डवांडोल न होगी। गिरीश घोष क्या नहीं जायगा ?

श्रीरामकृष्ण एक दृष्टि से द्विज को देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण। अच्छा इतने छोकड़े हैं, उनमें यही आता है—यह क्यों ? कहो—पहले का कुछ जरूर रहा होगा।

मास्टर। जी हां।

श्रीरामकृष्ण। संस्कार। गत जन्म में कर्म किया हुआ है। अन्तिम जन्म में मनुष्य सरल होता है। अन्तिम जन्म में पागलपन का भाव रहता है।

"परन्तु है यह उनकी इच्छा। उनकी 'हां' से संसार के कुल काम होते हैं और उनकी 'ना' से होनहार भी बन्द हो जाता है। इसी लिये तो आदमी को आशीर्वाद नहीं देना चाहिये।

"मनुष्य की इच्छा से कुछ होता नहीं। उन्हीं की इच्छा से होता और जाता है।"

उस दिन मैं कप्तान के वहां गया था। देखा, रास्ते से कुछ छोकड़े जा रहे थे। वे एक खास तरह के थे। एक छोकड़े को मैंने देखा, उन्नीस या बीस साल की उम्र रही होगी, बाल संवारे हुए था, सीटी बजाता हुआ चला जा रहा था। कोई 'नगेन्द्र—क्षीरोद" कहता हुआ जा रहा है, उसीके लिये कुछ अहंकार हो गया है। (द्विज से) जिसे ज्ञान हो गया है, उसे निन्दा की क्या परवाह है। उसकी बुद्धि कूटस्थ है—लोहार की निहाई जैसे, उसपर कितनी ही चोटें पड़ चुकीं, परन्तु उसका कहीं कुछ नहीं बिगड़ा।

"मैंने (अमुक के) बाप को देखा, रास्ते से चला जा रहा था।"

मास्टर। बड़ा सरल आदमी है।

श्रीरामकृष्ण। परन्तु आखें लाल रहती हैं।

श्रीरामकृष्ण कप्तान के यहां गये हुए थे। वहीं की बातें रहे हैं। सब लड़के श्रीरामकृष्ण के पास आते हैं, कप्तान ने उनकी निन्दा की थी। हाजरा महाशय से उन्होंने उनकी निन्दा सुनी होगी।

श्रीरामकृष्ण। कप्तान से बातें हो रही थीं। मैंने कहा, पुरुष और प्रकृति के सिवा और कुछ भी नहीं है। नारदने कहा था, हे राम, जितने पुरुष देखते हो सब में तुम्हारा अंश है और जितनी स्त्रियां देखते हो सब में सीता का अंश।

"कप्तान को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा, आपही को यथार्थ बोध हुआ है सब पुरुष रामके अंश से हुए अतएव राम हैं और सब स्त्रियां सीता के अंश से हुई अतएव सीता। फिर थोड़ी ही देर में उसने छोकड़ों की निन्दा करने लगा। कहा, 'वे लोग अंग्रेजी पढ़ते हैं, जो पाते हैं वही खाते हैं,—वे लोग तुम्हारे पास जाते हैं, यह अच्छा नहीं। इससे तुमपर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। हाजरा ही एक सच्चा आदमी है। उन्हें ज्यादा जाने न दिया कीजिये।' पहले तो मैंने कहा, जाया करते हैं—मैं क्या कहूं ?

"फिर मैंने कलेजा कुचल दिया। उसकी लड़की हंसने लगी। मैंने कहा, जिसमें विषय बुद्धि है, उससे ईश्वर बहुत दूर हैं। विषय बुद्धि अगर न रही तो उस आदमी की मुट्ठी में ईश्वर हैं—बहुत नजदीक हैं। कप्तान ने राखाल की बातपर कहा, वह सबके यहां खाता है। हाजरा से उसने सुना होगा। तब मैंने कहा, कोई चाहे लाख जपतप करे, यदि उसमें विषय बुद्धि है, तो कहीं कुछ न होगा और शूकर मांस खानेपर भी अगर किसी का मन ईश्वर पर है तो वह मनुष्य धन्य है। क्रमशः ईश्वर की प्राप्ति उसे होगी ही। हाजरा इतना जपतप करता है, परन्तु उसीके भीतर दलाली करने की फ़िक्र में रहता है।

"तब कप्तान ने कहा, हां, यह बात तो ठीक है। मैंने कहा, अभी अभी तो तुमने कहा,—सब पुरुष राम के अंश से हुए अतएव राम हैं और सब स्त्रियां सीता के अंश से हुई अतएव सीता हैं, इस तरह कहकर अब ऐसी बात कह रहे हो ?

"कप्तान ने कहा, है तो—मगर तुम भी तो सबको नहीं प्यार करते।"

"मैंने कहा, 'आपो नारायण' सभी जल है, परन्तु कोई जल पिया जाता है, किसीसे बरतन धोये जाते हैं, कोई शौच के काम आता है। यह जो तुम्हारी बीबी और लड़की बैठी हुई हैं, देख रहा हूं, ये साक्षात् आनन्दमयी हैं। कप्तान कहने लगा, हां हां, यह ठीक है। तब मेरे पैर पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाने लगा।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण हंसने लगे। अब श्रीरामकृष्ण कप्तान के गुणों की बात कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण। कप्तान में बहुत से गुण हैं। रोज नित्यकर्म करता है, खुद देवतों की पूजा करता है। नहाते समय कितने ही मंत्र जपा करता है। कप्तान एक बहुत बड़ा कर्मी है। पूजा, जप, आरती, पाठ, ये सब नित्य कर्म हमेशा किया करता है।

"मैं कप्तान को बकने लगा। मैंने कहा, पढ़कर ही तुमने सब मिट्टी में मिलाया अब हरगिज़ न पढ़ना।

"मेरी अवस्था के लिये कप्तान ने कहा, यह आसमान में चक्कर मारता हुआ भाव है। जीवात्मा और परमात्मा में, जीवात्मा एक पक्षी है और परमात्मा आकाश—चिदाकाश। कप्तान कहता है, तुम्हारा जीवात्मा चिदाकाश में उड़ जाता है, इसीलिये समाधि होती है। (हंसकर) कप्तान ने बंगालियोंकी निन्दा की। कहा बंगाली बेवकूफ़ हैं, पास मणि है और उन लोगों ने न पहचाना !

"कप्तान का बाप बड़ा भक्त था। अंग्रेजों की फौज में सुबेदार

था, एक हाथ से शिव को पूजा करता था, दूसरे से बन्दूक चलाता था।

"(मास्टर से) परन्तु बात यह है, कि विषय के कामों में दिन रात फंसा रहता है, जब जाता हूं, देखता हूं, बीवी और बच्चे घेरे रहते हैं। और कभी कभी हिसाब की बही भी लोग ले आते हैं। एक एक बार ईश्वर की ओर भी मन जाता है। जैसे सन्निपात का रोगी, विकारग्रस्त बना ही रहता है, एक एक बार होश में आता है, तब 'पानी पियूंगा, पानी पियूंगा' कहकर चिल्ला उठता है। पानी देते देते फिर बेहोश हो जाता है। इसीलिये मैंने उससे कहा, तुम कर्मी हो। कप्तान ने कहा, 'जी, मुझे तो पूजा आदि के करने में ही आनन्द आता है। जीवों के लिये कर्म के सिवा और उपाय भी नहीं है।'

"मैंने कहा, तो क्या सदा ही कर्म करते रहना होगा ? मधुमक्खी तभीतक भन्भन् करती है जबतक वे फूलपर नहीं बैठ जाती। मधु पीते समय भन्भन् करना छूट जाता है। कप्तान ने कहा, आपकी तरह हमलोग पूजा और कर्म छोड़ थोड़े ही सकते हैं ? परन्तु उसकी बातका ठीक नहीं ; कभी तो कहता है, यह सब जड़ है और कभी कहता सब चैतन्य है।"

श्रीरामकृष्ण मास्टरसे पूर्णकी बात पूछने लगे।

श्रीरामकृष्ण। पूर्ण को एक बार और देख लूँ तो मेरी व्याकुलता कम हो। कितना चतुर है!—मेरी ओर आकर्षण भी खूब है।

वह कहता है, आप को देखने के लिये मेरे हृदय में भी न जाने कैसा हुआ करता है।

(मास्टर से) तुम्हारे स्कूल से उसके घर वालों ने उसे निकाल लिया, क्या तुम्हारी कुछ क्षति होगी ?

मास्टर। अगर वे (विद्यासागर) कहें—तुम्हारे लिये उसको स्कूल से छोड़ा लेना पड़ा—तो मेरी जवाब भी कुछ है।

श्रीरामकृष्ण। क्या कहोगे ?

मास्टर। यही कहूंगा कि साधुओं के साथ ईश्वर-चिन्ता होती है, यह कोई बुरा कर्म नहीं और आप लोगों ने जो पुस्तक पढ़ाने के लिये दी है, उसी में है—ईश्वर को हृदय खोल कर प्यार करना चाहिये। (श्रीरामकृष्ण हँसने लगे)

श्रीरामकृष्ण। कप्तानके यहां छोटे नरेन को मैंने बुलाया। पूछा, तेरा घर कहाँ है ?—चल चलें। उसने कहा, चलिये। परन्तु डरता हुआ साथ जा रहा था कि कहीं बापको खबर न लग जाय। (सब हँसते हैं)

" (अखिल बाबू के पड़ोसी से) क्योंजी तुम बहुत दिनोंसे नहीं आये, सात आठ महीने तो हुए होंगे।

पड़ोसी। जी, एक साल हुआ होगा।

श्रीरामकृष्ण। तुम्हारे साथ एक और आते थे।

पड़ोसी। जी हां, नीलमणि बाबू।

श्रीरामकृष्ण। वे सब क्यों नहीं आते ?—एक बार उनसे आने के लिये कहना—उनसे मुलाकात करा देना। (पड़ोसी के साथके बच्चे को देखकर) यह बचा कौन है ?

पड़ोसी। यह आसाम का है।

श्रीरामकृष्ण। आसाम कहां है ? किस ओर है ?

द्विज आशुतोष की बात करने लगे। कहा, आशुतोष के पिता उसका विवाह करने वाले हैं, परन्तु उस की इच्छा नहीं है।

श्रीरामकृष्ण। देखो तो, उसकी इच्छा नहीं है और जबरन उसका विवाह किया जाता है।

श्रीरामकृष्ण एक भक्त से बड़े भाई पर भक्ति करने के लिये कह रहे हैं। कहा—बड़ा भाई पिता के समान है, उसका बड़ा सम्मान करना चाहिये।

(२)

पण्डितजी बैठे हुए हैं। वे भारत के उत्तर पश्चिम प्रदेश के हैं।

श्रीरामकृष्ण (हँसकर, मास्टर से)। भागवत के ये बड़े अच्छे पंडित हैं।

मास्टर और भक्तगण एक दृष्टि से पंडितजी को देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (पंडितजी से)। क्यों जी, योग माया क्या है ?

पंडितजी ने योगमाया की एक तरह की व्याख्या की।

श्रीरामकृष्ण। राधिका को योगमाया क्यों नहीं कहते ?

पण्डितजी ने इस प्रश्न का उत्तर भी एक खास तरह का दिया। तब श्रीरामकृष्ण ने कहा—राधिका शुद्ध सत्त्व की थीं—वे प्रेममयी थीं। योगमाया के भीतर तीनों गुण हैं, सत्त्व, रज और तम ; परन्तु राधिका के भीतर शुद्ध सत्त्व के सिवा और कुछ न था। (मास्टर से) नरेन्द्र अब श्रीमती को बहुत मानता है। वह कहता है, सच्चिदानन्द को प्यार करने की शिक्षा अगर किसीको लेनी है तो राधिका के पास से लेनी चाहिये।

"सच्चिदानन्द ने स्वयं ही अपना रसास्वादन करनेके लिये राधिका की सृष्टि की थी। राधिका सच्चिदानन्द कृष्ण के अंग से निकली थीं। 'आधार' सच्चिदानन्द कृष्ण ही हैं और श्रीमती के रूप में स्वयं ही 'आधेय' हैं—अपना रसास्वादन करने के लिये यानी सच्चिदानन्द को प्यार करके आनन्द-संभोग करने के लिये।

"इसी लिये वैष्णवों के ग्रन्थ में है, राधा ने पैदा होकर आंखें नहीं खोली थीं। यह भाव था कि इन आंखों से और किसे देखूं ? राधिका को देखने के लिये यशोदा जब कृष्ण को गोद में लेकर गई थीं, तब उन्होंने कृष्ण को देखने के लिये आंखें खोली थीं। कृष्ण ने क्रीड़ा के मिस राधिका की आंखों पर हाथ फेरा था। (नये आये हुए बालक से) यह कैसा है, देखा, छोटा सा बच्चा आंखों पर हाथ फेरता है।"

पण्डित जी विदा होने लगे।

पण्डित। मैं घर जाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण (सस्नेह)। कुछ प्राप्त हुआ ?

पंडित। भाव गिरा हुआ है—रोजगार नहीं चलता।

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके पण्डित जी विदा हुए।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)। देखो—विषयी लोगों और बच्चों में कितना अन्तर है। यह पण्डित दिनरात रुपया रुपया कर रहा है। कलकत्ता पेट के लिये आया हुआ है। नहीं घर के आदमियों को भोजन नहीं मिलता। इसीलिये इसके उसके दरवाजे दौड़ना पड़ता है। मन को एकाग्र करके ईश्वर की चिन्ता कब करे ? परन्तु छोकड़ों में कामिनी और कांचन नहीं हैं। इच्छा करने ही से ये ईश्वर पर मन लगा सकते हैं।

"छोकड़े विषयो मनुष्यों का संग पसन्द भी नहीं करते। राखाल कहता था, विषयी आदमी को आते हुए देखकर भय होता है।

"मुझे जब पहले पहल यह अवस्था हुई तब विषयी आदमी को आते हुए देखकर कमरे का दरवाजा बन्द कर लेता था।

"देश में श्रीराम मल्लिक को इतना मैं प्यार करता था, परन्तु अब वह यहां आया तब उसे छू भी नहीं सका।

"श्रीराम से बचपन में बड़ा मेल था। दिनरात हम दोनों एक साथ रहते थे। एक साथ सोते थे। तब सोलह सत्रह साल की उम्र थी। लोग कहते थे, इनमें से अगर एक औरत होता तो साथ ही विवाह भी हो जाता। उसके घर में हम दोनों खेलते थे। उस समय की सब बातें याद आ रही हैं। उनके कुटुम्ब पालकी पर चढ़-कर आया करते थे, कहार 'हिंजोड़ा हिंजोड़ा' कहा करते थे।

"श्रीराम को देखने के लिये कितने ही बार मैंने बुला भेजा। अब चानक में उसने दूकान खोली है। उस दिन आया था, यहां दो दिन रहा था।

"श्रीराम ने कहा, मेरे तो लड़के-वाले नहीं हुए, भतीजे को पालकर आदमी कर रहा था, वह भी गुजर गया। कहते ही कहते श्रीराम ने लम्बी सांस छोड़ी, आंखों में पानी भर आया भतीजे के लिये दुःख करने लगा।

"फिर उसने कहा, लड़का नहीं हुआ था, इसलिये स्त्री का कुल प्यार उसी भतीजे पर पड़ा था। अब वह शोक से अधीर हो रही है। मैं उसे बहुत समझाता हूं, पागली, अब शोक करने से क्या होगा? तू काशी जायगी?

"उसने कहा, स्त्री पागल की तरह हो गई है। उसने संसार से एकदम dilute (गल जाना) हो कर अपना अस्तित्व खो दिया। मैं उसे छू नहीं सका। देखा, उसमें कुछ जीवट नहीं है।"

श्रीरामकृष्ण शोक के सम्बन्ध में यही सब बातें कह रहे हैं। इधर कमरे के उत्तर तरफवाले दरवाजे के पास वह शोकविह्वल ब्राह्मणी खड़ी हुई हैं। ब्राह्मणी विधवा हैं। उनके एक लड़की ही थी। उसका विवाह बहुत बड़े घराने में हुआ था। उस लड़की के पति राजा की उपाधि पाये हुए हैं। कलकत्ते में रहते हैं, जमीन्दार हैं। लड़की जब अपने मायके आती थी, तब साथ सशस्त्र सिपाही पालकी के आगे पीछे लगे हुए आते थे। माता की छाती उस समय गजभर की हो जाती थी। वह एकलौती लड़की, कुछ दिन हुए, गुजर गई है।

ब्राह्मणी खड़ी हुई, भतीजे के वियोग से राम मल्लिक की क्या दशा थी, सुन रही थीं। कई रोज से वे लगातार बागबाजार से पागल की तरह श्रीरामकृष्ण के पास दौड़ी हुई आती थीं, इसलिये कि अगर कोई उपाय हो जाय—अगर वे इस दुर्जय शोक के निराकरण की कोई व्यवस्था कर दें। श्रीरामकृष्ण फिर बातचीत करने लगे—

श्रीरामकृष्ण (ब्राह्मणी और भक्तों से)। एक आदमी यहां आया था। कुछ देर बैठने के बाद कहा, 'जाऊँ, जरा बच्चे का चांद का टुकड़ा मुख भी देखूं'।

"तब मुझ से रहा नहीं गया। मैंने कहा, खूब कहा रे साला, उठ यहां से, ईश्वर के चांद-मुख से बढ़कर बच्चे का चांद-मुख?

"(मास्टर से) बात यह है कि ईश्वर ही सत्य हैं और सब अनित्य है। जीव, जगत, घर-द्वार, लड़के-बच्चे, यह सब बाजीगर का इन्द्रजाल है। बाजीगर डंडे से ढोल पीटता है और कहता है, 'देख तमाशा मेरा—तु देख तमाशा मेरा'। बस ढकन खोला नहीं कि कुछ पक्षी उससे निकल कर आकाश में उड़ गये। परन्तु बाजीगर ही सत्य है और सब अनित्य है—अभी है, थोड़ी देर में गायब।

"कैलाश में शिव बैठे हुए थे। पास नन्दी थे। ऐसे समय एक बहुत बड़ा शब्द हुआ। नन्दी ने पूछा, भगवन, यह कैसा आवाज है? शिव ने कहा, रावण पैदा हुआ, यह उसी की आवाज है। कुछ देर बाद फिर एक आवाज आई। नन्दी ने पूछा, यह कैसी आवाज है? हँसकर शिव ने कहा, अब के रावण मारा गया। जन्म और मृत्यु, यह सब इन्द्रजाल सा है। अभी है, अभी गायब! ईश्वर ही सत्य हैं और सब अनित्य है। पानी ही सत्य है, पानी के बुलबुले अभी हैं, अभी नहीं—बुलबुले पानी में ही मिल जाते हैं,—जिस जल से उनकी उत्पत्ति होती है, उसी जल में अन्त तक लीन भी हो जाते हैं।

"ईश्वर, महासमुद्र हैं, जीव बुलबुले; उसीमें पैदा होते हैं, उसीमें लीन हो जाते हैं। लड़के-बच्चे एक बड़े बुलबुले के साथ मिले हुए कई छोटे छोटे बुलबुले हैं।

"ईश्वर ही सत्य हैं। उनपर कैसे भक्ति हो उन्हें किस तरह प्राप्त कर सकोगे, इस समय यही चेष्टा करो। शोक करने से क्या होगा ?"

सब चुप हैं। ब्राह्मणी ने कहा, तो अब मैं जाऊं।

श्रीरामकृष्ण (ब्राह्मणी से, सस्नेह)। तुम इस समय जाओगी ? धूप बहुल तेज है, क्यों, इन लोगों के साथ गाड़ी पर जाना।

आज जेठ की संक्रान्ति है। दिन के तीन या चार का वक्त होगा। गरमी जोरो की पड़ रही है। एक भक्त श्रीरामकृष्ण के लिये चन्दन का एक नया पंखा ले आये। श्रीरामकृष्ण पंखा पाकर बड़े प्रसन्न हुए, कहा, "वाह-वाह ! ओं तत् सत् काली !" यह कहकर पहले देवतों के पंखा झलने लगे। फिर मास्टर से कह रहे हैं, देखो, कैसी हवा आती है ! मास्टर भी प्रसन्न होकर देख रहे हैं।

(२)

बच्चे को साथ लेकर कप्तान आये हुए हैं। श्रीरामकृष्ण ने किशोरी से कहा, इन्हें सब दिखा ले आओ—ठाकुरबाड़ी।

श्रीरामकृष्ण कप्तान से बातचीत कर रहे हैं। मास्टर, द्विज आदि भक्त फर्श पर बैठे हुए हैं। दमदमा के मास्टर भी आये हुए हैं। श्रीरामकृष्ण छोटी खाटपर उत्तर की ओर मुंह किये बैठे हुए हैं। कप्तान से उन्होंने खाट की एक बगल में अपने सामने बैठने के लिये कहा।

श्रीरामकृष्ण। इन लोगों से तुम्हारी बाते कह रहा था। तुम में कितनी भक्ति है, कितनी पूजा करते हो, कितने प्रकार से आरती करते हो, यह सब बतला रहा था।

कप्तान (लज्जित होकर) मैं क्या पूजा और आरती करूंगा ? मैं क्या हूं ?

श्रीरामकृष्ण। जो 'मैं' कामनी और कांचन में पड़ा हुआ है, उसी 'मैं' में दोष है। मैं ईश्वर का दास हूं, इस 'मैं' में दोष नहीं। और बालक का 'मैं'—बालक किसी गुण के बस नहीं है। अभी लड़ाई कर रहा है, देखते देखते मेल हो गया। कितने ही यत्न से अभी अभी खेलने का घरौंधा बनाया, फिर बात की बात में उसे बिगाड़ डाला ! दास 'मैं' और बच्चे के 'मैं' में दोष नहीं है। यह 'मैं' 'मैं' में नहीं गिना जाता, जैसे मिश्री मिठाई में नहीं गिनी जाती। दूसरी मिठाई से बीमारी फैलती है, परन्तु मिश्री अम्लनाश करती है, जैसे ओंकार शब्द में नहीं है।

"इस अहं से ही सच्चिदान्द को प्यार किया जाता है। अहं जाने का है ही नहीं—इसीलिये दास 'मैं' और भक्त का 'मैं' है। नहीं तो आदमी क्या लेकर रहे। गोपियों को प्रेम कितना गहरा था ! (कप्तान से) तुम गोपियों की बात कुछ कहो—तुम इतना भागवत पढ़ते हो।"

कप्तान। श्रीकृष्ण वृन्दावन में थे, कोई ऐश्वर्य नहीं था, तो भी गोपियाँ उन्हें प्राणों से अधिक प्यार करती थीं। इसीलिये श्रीकृष्ण ने कहा था, मैं कैसे उनका ऋण शोध करूंगा ? जिन गोपियों ने मुझे सब कुछ समर्पित कर दिया है—देह,—मन,—चित्त।

श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो रहा है। 'गोविन्द, गोविन्द, गोविन्द' कह कर आविष्ट हो रहे हैं। प्रायः बाह्य शून्य हैं। कप्तान विस्मयावेश में 'धन्य है धन्य है' कह रहे हैं।

कप्तान और एकत्र हुए भक्तगण श्रीरामकृष्ण की यह अद्भुत प्रेमावस्था देख रहे हैं। जबतक वे प्राकृत दशा में न आ जायं, तब तक वे चुपचाप एक दृष्टि से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण। इसके बाद ?

कप्तान। वे योगियों के लिये भी अगम्य हैं, 'योगिभिरगम्यम्,' आपकी तरह योगियों के लिये भी अगम्य है, परन्तु गोपियों के लिये गम्य हैं। योगियों ने वर्षों तक योग-साधना करके जिन्हें नहीं पाया गोपियों ने अनायास ही उन्हें प्राप्त कर लिया है।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)। गोपियों के पास भोजन पान, हसना-रोना, क्रीड़ा-कौतुक, यह सब हो चुका है।

एक भक्त ने कहा, श्रीयुत वंकिम ने कृष्ण चरित्र लिखा है।

श्रीरामकृष्ण। वंकिम कृष्ण को मानता है, श्रीमती को नहीं मानता।

कप्तान। लीला शायद नहीं मानते ?

श्रीरामकृष्ण। सुना, कहता है, काम आदि की जरूरत है।

दमदम के मास्टर। नवजीवन में वंकिम ने लिखा है, धर्म की आवश्यकता शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक वृत्तियोंकी स्फूर्ति के लिये है।

कप्तान। 'कामादि की आवश्यकता है'—यह कहते हैं, फिर भी लीला नहीं मानते! ईश्वर मनुष्य के रूप में वृन्दावन में आये थे, राधा और कृष्ण की लीला हुई थी यह नहीं मानते ?

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)। ये सब बातें संवाद पत्रों में नहीं है, फिर किस तरह मान ली जायें ?

"एक ने अपने मित्र से आकर कहा, 'भैजी, कल उस महले से मैं जा रहा था, ऐसे समय देखा, वह मकान भरभराकर गिर गया।' मित्र ने कहा, 'जरा ठहरो, अखबार देखूं'। घर के भरभराकर गिरने की बात अखबार में कहीं कुछ न थी। तब उस आदमीने कहा, 'क्यों जी, अखबार में तो कहीं कुछ नहीं लिखा। ये सब कोई काम की बातें नहीं हैं।' उस आदमी ने कहा, मैं देखकर आ रहा हूं। उसने कहा, 'यह हो सकता है, परन्तु अखबार में यह बात नहीं लिखी, इसलिये लाचार होकर मुझे इसपर विश्वास नहीं करना पड़ रहा।' ईश्वर आदमी होकर लीला करते हैं, यह बात कैसे वे लोग मानेंगे ? यह बात उनकी अंग्रेजी शिक्षा के घेरे में जो नहीं है! पूर्ण अवतार का समझाना बहुत मुश्किल है, क्यों जी ? साढ़े तीन हाथ के भीतर अनन्त का समा जाना!"

कप्तान। 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्।' कहते समय पूर्ण और अंश इस तरह कहना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण। पूर्ण और अंश, जैसे अग्नि और उसका स्फूलिंग। अवतार भक्तों के लिये है,—ज्ञानी के लिये नहीं। अध्यात्म रामायण में है, हे राम! तुम्हीं व्याप्य हो, तुम्हीं व्यापक हो—'वाच्य वाचक भेदेन त्वमेव परमेश्वरः।'

कप्तान। वाच्य-वाचक यानी व्याप्य व्यापक।

श्रीरामकृष्ण। व्यापक अर्थात जैसे एक छोटासा रूप—जैसे अवतार आदमी का स्वरूप धारणा करते हैं।

भयानक भूल

किसीने आ खटकाया द्वार।
बोला, "क्यों बेखबर पड़ा है, निर्भय पलकें मार।
तेरे घर में चोर घुसे हैं—लूट रहे घर-बार—
जाग उठ झट-पट दीपक बार।"
किसीने आ खटकाया द्वार।
इसी तरह चेताया मुझ को, उसने बारम्बार।
किन्तु खेद हा! मैं ना जागा, चोर हुए हुशियार।
चले गये कर के बण्टाढार।
किसीने आ खटकाया द्वार।
सब कुछ लेकर चले गये तब, उठा आप झखमार।
अन्न बस्त्र धन गया देख अब—बैठा पकड़ कपार।
मच गया घर में हाहाकार।

—गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"।

परिव्राजक ।

(स्वामी विवेकानन्द)

(गतांक से आगे)

वियेना शहर पेरिस की नकल का एक छोटा शहर है। परन्तु आस्ट्रियन, जाति के जर्मन हैं। वर्तमान समय में, प्रूसराज विलहेलेख की दूरदर्शिता से, मंत्रिवर बिसमार्क के अपूर्व बुद्धि कौशल से, और सेनापति फन्मल्टके के युद्ध प्रतिभा से प्रूसराज आस्ट्रिया छोड़ कुल जर्मनी के बादशाह हैं। हतश्री हतवीर्य आस्ट्रिया किसी तरह पूर्वकाल के नाम और गौरव की रक्षा कर रहे हैं। आस्ट्रीय राजवंश, हाप्स्वर्ग वंश योरप का सब से प्राचीन और अभिजात राजवंश है। जो जर्मन राजन्यकुल योरप के प्रायः सभी देशों में सिंहासन पर अधिष्ठित है, जिस जर्मनी के छोटे छोटे करद राजों ने इङ्गलैण्ड और रूसिया में भी महाबल साम्राज्यशीर्ष पर सिंहासन की स्थापना की है, उसी जर्मनी के बादशाह अबतक आस्ट्रिया के राजवंशके थे। उस सान और उस गौरव की इच्छा आस्ट्रिया में पूर्णतः है, केवल नहीं है, सिर्फ शक्ति। तुर्क को योरप में "आतुर वृद्ध पुरुष" कहते हैं; आस्ट्रिया को "आतुरा वृद्धा स्त्री" कहना चाहिये। आस्ट्रिया कैथलिक सम्प्रदाय में मिली हुई है; उस दिन तक आस्ट्रिया के साम्राज्य का नाम था—"पवित्र रोम साम्राज्य"। वर्तमान जर्मनी प्रोटेस्टान्ट-प्रबल है। आस्ट्रिया के सम्राट सदा ही पोप के दाहिने हाथ रहे हैं, अनुगामी शिस्य, रोमक सम्प्रदाय के नेता। अब योरप में कैथलिक बादशाह केवल एक आस्ट्रिया के सम्राट् हैं; कैथलिक संघ की बड़ी लड़की फ्रांस है, अब प्रजातंत्र; स्पेन पोर्तुगल, अधः पतित है! इटली, वे केवल पोप को सिंहासन-स्थापना की जगह दी है;

पोप का ऐश्वर्य, राज्य, सब छीन लिया है; इटली के राजा और रोम के पोप से कभी आंखें भी नहीं मिलतीं, विशेष शत्रुता है। पोप की राजधानी रोम अब इटली की राजधानी है। पोप के प्राचीन प्रासाद पर दखल कर अब राजा निवास करते हैं, पोप का प्राचीन इटली राज्य अब पोप के वेंटिकन (Vatican) प्रासाद की चौहद्दी तक परिमित है। किन्तु पोप का धर्म संबन्धी प्राधान्य अब भी बहुत है। इस शक्ति का विशेष सहायक आस्ट्रिया है। आस्ट्रिया के विरुद्ध, अथवा पोप-सहाय आट्रिया की बहुकाल व्यापी दासता के विरुद्ध नइ इटली का अभ्युत्थान हुआ। इसीलिये आस्ट्रिया विपक्ष में है, और इटली खोकर विपक्ष में। बीच से इङ्गलैण्ड के कुटिल परामर्श से नवीन इटली महासैन्यबल, रणपोतबल संग्रह करने में बद्धपरिकर हुई। लेकिन उतना रुपया कहां। ऋण के जाल से जकड़कर इटली नष्ट होने की राह देख रही है; फिर कहां का उत्पात खड़ा किया—अफ्रिका में राज्यविस्तार करने गई। हवशी बादशाह के पास हारकर, हतमान, हतश्री होकर, बैठ गई है। इधर प्रूसिया ने युद्ध में हराकर आस्ट्रिया को बहुत दूर हटा दिया। आस्ट्रिया धीरे-धीरे मरी जा रही है, और इटाली नवीन जीवन का दुर्व्यवहार से तद्वत् जालबद्ध हो गई है।

आस्ट्रिया के राजवंशवालों को अब भी योरप के सब राजवंशों से ज्यादा अहंकार है। वे लोग बहुत प्राचीन और बहुत बड़े वंश के हैं। इस वंश के विवाह आदि बड़प्पन देखकर किये जाते हैं। कैथलिक बिना हुए उस वंश के साथ विवाह आदि होते ही नहीं। इस बड़े वंश को चक्कर में पड़कर महावीर नेपोलियन का अधःपतन हुआ। न जाने कैसे उनके दिमाग में समा गया कि बड़े राजवंश की लड़की से विवाह करके पुत्र-पौत्रादि क्रम से एक महावंश की स्थापना करेंगे। जो वीर, "आप किस वंश में पैदा हुए

हैं ?" इस प्रश्न के उत्तर में कहा था, "मैं किसीके वंश का सन्तान नहीं हूं—मैं महावंश का स्थापक हूं" अर्थात् मुझसे महिमान्वित वंश चलेगा, मैं किसी पूर्व पूरुष का नाम लेकर बड़ा होने के लिये नहीं पैदा हुआ,— उसी वीर का इस वंश मर्यादा रूप अन्धकूप में पतन हुआ।

रानी जोसेफिन का परित्याग, युद्ध में पराजित कर आस्ट्रिया के बादशाह से कन्या ग्रहण, महासमारोह के साथ आस्ट्रियन राजकुमारी मेरी लुइस के साथ बोनापार्ट का विवाह, पुत्र जन्म, सद्यःप्रसूत शिशु को रोमराज्य में अभिषिक्त करना, नेपोलियन का पतन, ससुर की शत्रुता, लाइपजिक्, वाटरलू, सेन्टहेलेना, रानी मेरी लुइस का सपुत्र पिता के घर वास, साधारण सैनिक के साथ बोनापार्ट-साम्राज्ञी का विवाह, एक मात्र पुत्र रोमराज की मातामह के यहां मृत्यु,—ये सब इतिहास-प्रसिद्ध कथाएं हैं।

फ्रांस इस समय पहले से कुछ कमजोर हालत में पड़कर प्राचीन गौरव स्मरण कर रहा है। आजकल नेपोलियन सम्बन्धी पुस्तकें बहुत हैं। सार्दू आदि नाट्यकार गत नेपोलियन के बारे में बहुत सी किताबें लिखी हैं। मादाम बार्नहार्ड, रेजां आदि अभिनेत्रियां ; कांफेलां आदि अभिनेतागण उन सब पुस्तकों का अभिनय कर हर रात को थियेटर भर रहे हैं। सम्प्रति "लेग्लँ" (गरुड़ शावक) नामक एक पुस्तक का अभिनय कर मादाम बार्नहार्ड ने पेरिस-नगरी में महा आकर्षण उपस्थित कर दिया है।

गरुड़शावक है बोनापर्ट का एक मात्र पुत्र, मातामहगृह में, वियेना के प्रासाद में एक तरह नज़र कैद। आस्ट्रिया के बादशाह के मंत्री, चाणक्य सदृश्य मेटारनिक, बालक के मन में पिता की गौरव-काहिनी बिलकुल ना पहुंचे, इस तरफ सदा ही सतर्क हैं। परन्तु दो-चार बोनापार्ट के पुराने सैनिक, अनेक उपायों से सामबोर्न प्रासाद में

अज्ञात भाव से बालक की नौकरी करते हैं ; उनकी इच्छा है, किसी तरह बालक को फ्रांस हाज़िर करना और समवेत-यूरोपीयन—राजन्य-गण द्वारा पुनः स्थापित बुर्बों वंश को हटाकर बोनापार्ट वंश की स्थापना करना। शिशु महावीर पुत्र है ; पिता की रण-गौरव की कहानी सुनकर उसका वह सुप्त तेज बहुत जल्द जग उठा। चक्रान्त-कारियों के साथ बालक सामबोर्न प्रासाद से एक दिन भगा ; परन्तु मेटारनिक की कुशाग्र बुद्धि ने पहले ही से पता लगा लिया था,—उसने यात्रा रोक दी, बोनापार्ट के लड़के को फिर सामबोर्न प्रासाद में लौटना पड़ा। बद्ध पक्ष गरुड़ शिशु ने भग्न हृदय हो थोड़े ही दिनों में प्राण छोड़ दिये।

यह सामबोर्न-प्रासाद साधारण प्रासाद है। लेकिन घरद्वार खूब सजाये हुए हैं। किसी कमरे में सिर्फ चीना काम है, किसीमें सिर्फ हिन्दू दस्तकारी, किसी कमरे में किसी दूसरे देश का काम, इसी प्रकार और और। प्रासाद का उद्यान बहुत ही मनोहर है। परन्तु इस समय जितने आदमी इस प्रासाद को देखने जाते हैं, सब वही बोनापार्ट-पुत्र जिस घर में सोते थे, जिसमें पढ़ते थे, जिस कमरे में उनकी मृत्यु हुई थी, यही सब देखने जाते हैं। कितने ही अहमक फ्रेंच स्त्री-पुरुष, रक्षियों से पूछ रहे हैं "एग्लँ" का कमरा कौनसा है ?—किस बिस्तरे पर वे सोते थे ?—अरे मर अहमक ! ये जानते हैं, बोनापार्ट के लड़के हैं, इनकी लड़की, इनपर जुल्म कर छीन कर हुआ था संबंध, वह घृणा इनकी आज भी नहीं गई। नाती रक्खा जाता है, निराश्रय था, रक्खा था ; उसकी रोमराज—सोमराज की कोई उपाधि नहीं देते थे। सिर्फ आस्ट्रिया का नाती है, इसलिये ड्युक, बस। उसे तुमलोगों ने गरुड़शिशु मानकर एक किताब लिखी है, और उसपर अनेक प्रकार की कल्पनाएं जोड़ गांठकर मादाम बार्नहार्ड की प्रतिभा से एक आकर्षण फैला दिया है,—लेकिन

यह आस्ट्रिया का रक्षी वह नाम किस तरह समझेगा, कह ? इस पर उस किताव में लिखा गया है कि नैपोलियन के पुत्र को आस्ट्रिया के बादशाह ने मंत्री मेटारनिक के परामर्श से एक तरह मार ही डाला था। रक्षी "एगलँ" सुनकर मुँह फुलाकर बड़बड़ाता हुआ घरद्वार दिखाने लगा,—क्या करें, बक्सीस छोड़ना भी वहुत मुश्किल है। तिसपर, इन सब आस्ट्रिया आदि देशों में सैनिक विभाग में वेतन नहीं कहना ही ठीक होगा, एक तरह रोटियों में रहना पड़ता है। कई साल बाद घर लौट जाते हैं। रक्षी के मुँह पर सिहाई दौड़ गई और इस तरह उसने स्वदेश-प्रियता जाहिर की, लेकिन हाथ आपही आप बक्सीस की तरफ चला; फूँचों का दल रक्षी की मुट्ठी गर्म करके, "एगलँ" की कहानी कहते और मेटारनिक को गालियां देते हुए घर लौटे। रक्षी लम्बी सलाम बजाकर द्वार वन्द करने लगा। मनही मन कुछ फूँच जाति की पुश्तों की खवर जरूर ली होगी।

वियेना शहर में देखने की चीज है म्यूजियम, विशेष वैज्ञानिक म्यूजियम। विद्यार्थियों के लिये विशेष उपकारक स्थान है। नाना प्रकार प्राचीन लुप्त जीवों की अस्थ्यादि के अनेक संग्रह हैं। चित्रगृह में डच चित्रकारों के अनेक चित्र हैं। डचों के सम्प्रदाय में रूप निकालने की चेष्टा बहुत ही कम है। जीवप्रकृति के बिलकुल अनुकरण में इस सम्प्रदाय की प्रधानता है। एक शिल्पी ने लगातार कई साल मिहनत करके एक झोड़ी मछलियां तैयार की हैं, या एक खान मांस, या एक ग्लास पानी,—वे मछलियां मांस या जल चमतकारपूर्ण है। लेकिन डच सम्प्रदाय की सब स्त्रियां जैसे कुश्तीगीर पहलवान।

वियेना शहर में, जर्मन पांडित्य और बुद्धिवल है। लेकिन जिस कारण से तुर्की धीरे धीरे अवसन्न हो गया, वही कारण यहां भी मौजूद है—अर्थात् अनेक विभिन्न जातियों और भाषाओं का समावेश है। असल अस्ट्रिया के आदमी जर्मनभाषी, कैथलिक हैं। हंगरी के आदमी तातारवंशी हैं, भाषा और है, और कुछ ग्रीक-भाषी हैं ग्रीकान्ति के क्रिस्तान। इन सब विभिन्न सम्प्रदायोंके एकीभूत करने की शक्ति आस्ट्रिया में नहीं। इसीलिये आस्ट्रिया का अधःपतन हुआ।

वर्तमानकाल में योरपखण्ड में जातीयता की एक महातरंग उठी है। एक भाषा, एक धर्म, एक जातीय समस्त लोगों का एकत्र समावेश हो रहा है। जहां इस प्रकार एकत्र समावेश सिद्ध हो रहा है, वहां महावल का प्रादुर्भाव हो रहा है, जहां नहीं है, वहीं नाश भी है। वर्तमान आस्ट्रीय सम्राट की मृत्यु के बाद अवश्य ही जर्मनी आस्ट्रिया-साम्राज्य का जर्मनभाषी अंश उदरसात् करने की चेष्टा करेगा—रूस आदि अवश्य बाधा देंगे। महासमर की संभावना है। वर्तमान सम्राट अत्यन्त वृद्ध हैं—वह दुर्योग बहुत जल्द होगा। जर्मन सम्राट् तुर्की के सुलतान के आजकल सहायक हैं। उस समय जब जर्मनी आष्ट्रियाके ग्रासके लिये मुंह फैलायेगा, तब रूस का बैरी तुर्क रूस को कुछ न कुछ बाधा तो देगा ही। इसीलिये जर्मन सम्राट् तुर्कसे विशेष मित्रता दिखा रहे हैं।

वियेनामें तीन रोज़ रहकर थक गई तबीयत। पेरिसके बाद योरुप देखना चर्वचोष्य भोजनके बाद इमली की चटनी खाना है—वही कपड़े लत्ते, भोजन-पान, वही अब एक ढङ्ग, दुनिया भरके लोग का किम्भुत् किमाकार वही एक काला कुर्ता, वही एक विकट टोपी! इसके ऊपर है मेघ और नीचे किलबिला रहे हैं ये काली टोपी और काले कुर्तेवाले, दम जैसे घुटने लगता है। योरुप भरमें वही एक पोशाक, एक वही चाल-चलन कायम चला आ रहा है। प्रकृतिका कानून है, वह सब मृत्यु का चिह्न है। सैकड़ों वर्ष से कसरत कराकर हम लोगोंके आर्योंने हम लोगों को ऐसे एक ढर्रे पर कर दिया है कि हम लोग एक ही ढङ्ग से दांत माजते हैं, मुँह धोते हैं, खाते पीते हैं—आदि; —फल, हम लोग क्रमशः एक यन्त्र जैसे हो गये हैं, जान निकल गई है, सिर्फ डोलते फिरते हैं

यन्त्र की तरह। यंत्र 'ना' नहीं कहता और 'हां' भी नहीं कहता, अपना दिमाग नहीं लड़ाता—"येनास्य पितरो याताः" बापदादे जिस तरफ को होकर गये हैं, चले जाता है, इसके बाद सड़ कर मर जाता है। इनके लिये वैसा ही होगा। "कालस्य कुटिला गतिः" सब एक पोशाक, एक ही भोजन, एक ही ढांचे से बातचीत करना, आदि आदि होते होते क्रमशः सब यंत्र, क्रमशः सब "येनास्य पितरो जाताः" होगा,—इसके बाद सड़कर मरना।

२८ अक्तूबर पुनश्च रात्रिके ६ बजे वही ओरियेण्ट एक्सप्रेस ट्रेन फिर पकड़ी गई। ३० वीं अक्तुबरको ट्रेन कान्स्टान्टिनोपुल पहुंची। दो रात, एक दिन ट्रेन हंगरी, सर्विया और बुलगेरिया के भीतरसे चली। हंगरीके अधिवासी आस्ट्रिया सम्राट्की प्रजा है। किन्तु आस्ट्रिया सम्राट्की उपाधि है "आस्ट्रियाके सम्राट् और हंगरीके राजा।" हंगरीके आदमी और तुर्की लोग एक ही जाति हैं, तिब्बती के एक गोत्र थे। हुंगार लोग कास्पियन ह्रद के उत्तर तरफ से योरुप आये हैं और तुर्क लोगोंने धीरे धीरे फारसके पश्चिम प्रान्तसे एशिया माइनर होकर योरुप दखल किया है। हंगरी के लोग क्रिस्तान हैं और तुर्क मुसलमान हैं। लेकिन वह तातार-खूनका लड़ाका भाव दोनों में मौजूद है। हुंगार लोगोंने आस्ट्रिया से अलग होनेके लिये बारबार लड़ाइयां लड़ीं, अब केवल नाम मात्र एकत्र रह गये हैं। आस्ट्रियाके सम्राट् नामही के लिये हंगरी के राजा हैं। इनकी राजधानी बूडापेस्त बड़ा साफ सुथरा सुन्दर शहर है। हुंगार लोग बड़े कौतुक-प्रिय हैं। सङ्गीतके शौकीन हैं,—पेरिस में सभी जगह हुंगेरियन बैंड है।

सर्विया, बुलगेरिया आदि तुर्की के ज़िले थे,—रूसयुद्ध के बाद यथार्थतः स्वाधीन है। परन्तु सुलतान इस समय भी बादशाह हैं और सर्विया, बुलगेरिया का परराष्ट्र-संक्रान्त कोई भी अधिकार नहीं है। योरप में तीन जातियां सभ्य हैं—फरासी, जर्मन और अंग्रेज़।

बाकियों की दुर्दशा हमारी ही तरह है—अधिकांश इतने असभ्य हैं कि एशिया में इतनी नीच कोई जात नहीं। सर्बिया और बुलगेरिया मय, वही मिट्टी के घर, चीथड़े पहने हुए लोग, मैले-कुचैले—जान पड़ता है, जैसे अपने देश आये! फिर क्रिस्तान हैं न?—दो चार सुअर अवश्य ही हैं। दो सौ असभ्य आदमी जो मैला नहीं कर सकते, वह एक सुअर करता है। मिट्टी के घर, उनके मिट्टी की छतें, पहनने को चीथड़े, सुअर-सहाय सर्विया या बुलगार! बहु रक्तस्राव तथा अनेक युद्धों के बाद तुर्कों की दासता छूटी है; लेकिन साथ ही साथ भयानक उत्पात—योरप के ढंग से फौज गढ़ना होगा, नहीं तो किसीका एक दिन के लिये भी निस्तार नहीं है। अवश्य दो दिन आगे या बाद यह सब रूस के पेट में जायगा, परन्तु फिर भी वह दो दिन का जीवन भी फौज के बिना असम्भव है। 'कानस्क्रपशन' चाहिये। बुरे वक्त फ्रांस जर्मनी के हाथों पराजित हुआ। क्रोध और भय से फ्रांस ने देश भर के आदमियों को सिपाही बना डाला। पुरुषमात्र को कुछ दिनों के लिये सिपाही होना होगा। युद्ध सीखना होगा; किसी का निस्तार नहीं। तीन वर्ष बारिक में बास करके, क्रोड़पति का लड़का क्यों न हो, बन्दूक कन्धे पर रखकर युद्ध सीखना होगा। गवर्नमेंट खाने पहनने को देगी और तनख्वाह रोज एक पैसा। इसके बाद उसे दो वर्ष सदा अपने मकान में तैयार रहना होगा; इसके बाद और भी पन्द्रह वर्ष उसकी जरूरत होने पर ही लड़ाई के लिये उसे हाज़िर होना होगा। जर्मनी ने सिंह को उकसाया है,—उसे भी इसलिये तैयार होना पड़ा, दूसरे देश भी, इसके डर से वह और उसके डर से यह,—योरपभर में वही कान्स्क्रुपशन, एक इङ्गलेण्ड को छोड़कर। इङ्गलेण्ड है एक द्वीप—जहाज लगातार बढ़ा रहा है। लेकिन इस बोयर युद्ध की शिक्षा पाकर शायद कान्स्क्रपशन ही होगा। रूस की मनुष्य-संख्या सबसे ज्यादा है,

इसलिये रूस सबसे ज्यादा फौज खड़ा कर दे सकता है, इस वक्त जो ये सब सर्विया, बुलगेरिया आदि बिचारेराम देश हैं, तुर्कीको तोड़कर योरप में ला रहे हैं, उनका जन्म होते न होते ही आधुनिक सुशेक्षित सुसभ्य फौज और तोपें आदि चाहिये; आखिर यह पैसा कौन दे? लेहाजा किसानों को चीथड़े पहनने पड़े हैं और शहर में देखोगे, झब्बा झुब्बा पहने हुए सिपाही। योरपभर में सिपाही, सिपाही—सर्वत्र सिपाही। फिर भी स्वाधीनता एक और चीज है, गुलामी और; दूसरे लोग अगर जबरदस्ती करावें तो बहुत अच्छा काम भी नहीं किया जा सकता। अपना दायित्व न रहनेपर कोई बड़ा काम भी कोई नहीं कर सकता। स्वर्ण श्रृंखल-युक्त गुलामी की अपेक्षा, एक वक्त भोजन कर, चीथड़े पहनकर रहना लाख गुना अच्छा है। गुलाम के लिये इस लोक में भी नरक है और परलोक में भी वही। योरप के आदमी सर्विया-बुल्गार आदि लोगों की दिल्लगी उड़ाते हैं,—उनकी भूल, अपारगता आदि लेकर दिल्लगी करते हैं। किन्तु इतने काल की दासता के बाद क्या एक दिन में काम सीख सकते हैं? भूल तो करेंगे—दो सौ करेंगे;—करके सीखेंगे,—सीखकर ठीक करेंगे। उत्तरदायित्व हाथ में आनेपर अत्यन्त दुर्बल भी सबल हो जाता है,—अज्ञान भी विचक्षण होता है।

रेलगाड़ी हंगरी, रोमानी आदि के भीतर से चली। मृत प्रायः आस्ट्रिया-साम्राज्य में जो सब जातियां वास करती है, उनमें हुंगेरियनों में जीवनी शक्ति अब भी मौजूद है। जिसे यूरोपीय मनीषीगण इन्डोयूरोपियन या आर्यजाति कहते हैं, योरप की दो एक क्षुद्र जातियों को छोड़कर, और सब जातियां उसी महाजाति के अन्तर्गत हैं। जो दो एक जातियां संस्कृत सम भाषा नहीं बोलती, हुंगेरियन लोग उन्हीं में अन्यतम हैं, हुंगेरियन और तुर्की एक ही

जाति हैं। अपेक्षाकृत आधुनिक समय में इसी महा प्रबल जातिने एशिया और योरप खंड में आधिपत्य-विस्तार किया है। जिस देश को इस समय तुर्कीस्तान कहते हैं, पश्चिम में हिमालय और हिन्दूकोह पर्वत के उत्तर स्थित वह देश इस तुर्क जाति की आदि निवास भूमि है। उस देश का तुर्की नाम "चागवइ" है। दिल्ली का मोगल बादशाह वंश, वर्तमान फारस राजवंश कन्स्टान्टिनोपुल पति तुर्कवंश और हुंगेरियन जाति, सभी उस 'चागवइ' देश से क्रमशः भारतवर्ष आरंभ कर धीरे धीरे योरप तक अपना अधिकार बढ़ाते गये हैं, और आज भी ये सब वंश अपने को चागवइ कहकर परिचय देते हैं और एक ही भाषा में वर्तालाप करते हैं। ये तुर्की लोग बहुतकाल पहले अवश्य असभ्य थे। भेड़, घोड़े गौओं के दल साथ लिये, स्त्री-पुत्र-डेरा-डंडा-समेत, जहां जानवरों के चरने लायक घास देखते, वहीं डेरा गाड़कर कुछ दिन टिक रहते थे। घास जल वहां का चुक जाने पर अन्यत्र चले जाते थे। अब भी इस जाति के अनेक वंश मध्य एशिया में इसी तरह वास करते हैं। मोगल आदि मध्य एशिया की जातियो के साथ भाषागत इनका सम्पूर्ण ऐक्य है,—आकृति में कुछ फ़र्क है। सिर की गढ़न और गाल के हड्डी की उच्चता में तुर्क का मुख मोगलों के समाकार है, परन्तु तुर्क की नाक चिप्टी नहीं, बल्की बड़ी है, आंखें सीधी और बड़ी हैं, लेकिन मोगलों की तरह दोनों आंखों के बीच में व्यवधान बहुत ज्यादा है। अनुमान होता है कि बहुत काल से इस तुर्की जाति के भीतर आर्य और सेमेटिक खून समाया हुआ है। सनातन काल से यह तुरस्क जाति बड़ी ही युद्ध प्रिय है। और इस जाति के साथ संस्कृत भाषी, गंधारी और ईरानियों के मिश्रण से—अफ़गान, खिलिज़ी, हज़ारी, बरखज़ाई, यूसफ़ज़ाई आदि युद्धप्रिया, सदा रणोन्मत्त, भारतवर्ष की निग्रहकारिणी जातियों की उत्पत्ति हुई है। बहुत प्राचीनकाल में इस जाति ने

वारम्बार भारतवर्ष के पश्चिम प्रान्तस्थ सब देशों को जीत कर बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना की थी। तब ये लोग बौद्ध धर्मावलंबी थे, अथवा भारतवर्ष दखल करने के बाद बौद्ध हो जाते थे। काश्मीर के प्राचीन इतिहास में हुस्क, युस्क, कनिस्क नामक तीन प्रसिद्ध तुरस्क सम्राटों की कथा है ; यही कनिस्क ही महायान के नाम से उत्तराम्मा में बौद्ध धर्म के संस्थापक थे। बहुत काल बाद इनका अधिकांश ने ही मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया और बौद्ध धर्म के भीतर, एशियास्थ गान्धार, काबुल आदि प्रधान प्रधान केन्द्र सब बिलकुल ही नष्ट कर दिया। मुसलमान होने के पहले ये लोग जब जो देश विजय करते थे, उस देश की सभ्यता और विद्या ग्रहण करते थे और दूसरे देशों की विद्या बुद्धि आकर्षित कर सभ्यता-विस्तार की चेष्टा करते थे। परन्तु जब से मुसलमान हुए, इनकी केवल युद्ध-प्रियता ही रह गई ; विद्या और सभ्यता का नाम या कहीं गन्ध भी नहीं रह गई,—बल्कि जिस देश पर इनकी विजय होती है, उसकी सभ्यता का दीपक गुल हो जाता है। वर्तमान अफगान, गन्धार, आदि देशों में जगह-जगह उनके बौद्ध पूर्वपुरुषों के बनाये हुए अपूर्व स्तूप, मठ, मन्दिर, विराट सब मूर्तियां विद्यमान हैं। तुर्की मिश्रण और मुसलमान होने के फलसे वे सब मन्दिरादि प्रायः ध्वस हो गये हैं और आधुनिक अफगान आदि इस तरह के असभ्य और मूर्ख हो गये हैं कि उन सब प्राचीन स्थापत्यों की नकल करना तो दूर रहा, 'जिन' आदि अपदेवतों द्वारा निर्मित होने का विश्वास कर और मनुष्यों का इतना बड़ा कुछ किया नहीं होता, इसपर दृढ़ धारणा जमा बैठे हैं। वर्तमान फारिस की दुर्दशा का प्रधान कारण यह है कि राजवंश है प्रबल असभ्य तुर्क जाति और प्रजा लोग हैं अत्यन्त सभ्य आर्य,—प्राचीन फारिस-जाति के वंशधर। इसी प्रकार सुसभ्य आर्यवंशोद्भव ग्रीकों और रोमकों की अन्तिम रंगभूमि कन्स्टा-

न्टिनोपल साम्राज्य महाबल वर्वर तुरक्कों के पैरों रौंदकर नष्ट हो गया है। केवल भारतवर्ष के मोगल बादशाह इस नियम के बाहर थे ; वह शायद हिन्दूभाव और रक्त मिश्रण का फल है। राजपूत बारट और चारणों के इतिहास ग्रन्थों में भारतविजेता कुल मुसलमान वंश तुर्क के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह नाम बहुत ही ठीक है,—कारण, भारतविजेता मुसलमान वाहिनी-सब जिस किसी जाति से भरी क्यों न रही हों, नेतृत्व सदा इसी तुर्क जाति के हाथ में रहा था।

बौद्धधर्म-त्यागी तुर्कोंके नेतृत्वमें तथा बौद्ध वा वैदिक धर्म त्यागी तुर्कोंके अधीन रहनेवाले तुर्कों के बाहुबलसे मुसलमानकृत हिन्दूजातिके अंश विशेष द्वारा, पैत्रिक धर्म में स्थित अपर विभागके वारम्वार विजय का नाम है—भारतवर्षमें मुसलमान-आक्रमण, विजय और साम्राज्य-स्थापना। यह तुर्कोंकी भाषा और अवश्य उनके चेहरोंकी तरह बहु-मिश्रित हो गई है—विशेषतः जो सब दल मातृभूमि चागवइ से जितनी दूर जा पड़ा है, उनकी भाषा उतनी ही मिश्रित हो गई है। अबके फारिसका शाह पेरिस प्रदर्शनी देखकर कान्स्टान्टिनोपुल होकर रेलसे स्वदेश गये। देशकाल का बहुत कुछ व्यवधान रहने पर भी सुलतान और शाहने उसी प्राचीन तुर्की मातृभाषामें वार्तालाप किया। लेकिन सुलतानकी तुर्की—फारसी, अरबी, ओर दो चार ग्रीक शब्दों से मिली हुई थी, शाह की तुर्की कुछ ज्यादा शुद्ध थी।

प्राचीन काल में इन चागवइ-तुर्कों के दो दल थे। एक दलका नाम सफेद भेड़ों का दल था और दूसरे दलका नाम काले भेड़ों का दल था। दोनों दल जन्मभूमि काश्मीरके उत्तर भागसे भेड़ चराते चराते और देशोंमें लूट-पाट करते हुए क्रमशः कास्पियन ह्रदके किनारे आकर पहुंचे। सफेद भेड़ेवाले कास्पियन ह्रदके उत्तर तरफ होकर योरपमें घुसे और ध्वंसावशिष्ट रोमराज्य का एक टुकड़ा लेकर हंगेरी नामक राज्य स्थापित किया। काले भेड़ावाले कास्पियन ह्रदके दक्षिण

तरफसे क्रमशः फारिसके पश्चिम भाग पर अधिकार कर, काकेशास पर्वत उल्लंघन कर, क्रमशः एशिया-माइनर आदि अरबों का राज्य दखल कर बैठे; क्रमशः खलीफा के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। फिर पश्चिम रोम साम्राज्य का जितना अंश बाकी था, उसे भी अपने पेट में डाल लिया। बहुत प्राचीन काल में यह तुर्क जाति सांपों की बड़ी पूजा किया करती थी। शायद प्राचीन हिन्दू लोग इन्हें ही नाग-तक्षकादि के वंश कहते थे। इसके बाद ये लोग बौद्ध हो गये। बाद जब जो देश ये लोग जीतते थे, प्रायः उसी देशका धर्म ये ग्रहण करते थे। कुछ अधिक आधुनिक कालमें, जिन दो दलों की बातें हम लोग कह रहे हैं, उनमें सफेद भेंड़ावाले क्रिस्तानों को जीत कर क्रिस्तान हो गये। परन्तु इनकी क्रिस्तानी या मुसलमानीके भीतर अनुसन्धान करने पर नाग पूजा का स्तर तथा बौद्ध स्तर अब भी मिलता है।

हुंगेरियन लोग जाति और भाषा में तुर्क होने पर भी धर्म में क्रिस्तान हैं—रोमन कैथलिक। उस समय धर्म की कट्टरता कोई बन्धन नहीं मानती थी, न भाषा का, न रक्त का, न देश का। हुंगेरियनों की सहायता बिना पाये आस्ट्रिया आदि क्रिस्तान राज्य बहुधा आत्मरक्षा न कर सकते। वर्तमान समयमें विद्या के प्रचार से, भाषा-तत्व, जातितत्वके आविष्कार द्वारा, रक्तगत और भाषागत एकत्व के ऊपर अधिक आकर्षण हो रहा है; धर्म गत एकता क्रमशः शिथिल हुई जा रही है। इसलिये कृतविद्य हुंगेरियन और तुर्कों के बीच एक भाव पैदा हो रहा है।

आस्ट्रिया-साम्राज्यके अन्तर्गत होने पर भी हुंगेरी बारंबार उससे पृथक होनेकी चेष्टा कर रहा है। अनेक विप्लव विद्रोह को फलसे यह हुआ है कि हुंगेरी इस समय नाम के लिये तो आष्ट्रिया का एक प्रदेश है, किन्तु कार्यतः संपूर्ण स्वाधीन है। आष्ट्रिया के सम्राट् का

नाम है "आस्ट्रिया के बादशाह और हुंगेरी के राजा।" हुंगेरी का सब कुछ अलग है और यहां प्रजाओं की शक्ति सम्पूर्ण है। आस्ट्रिया के बादशाह को यहां नाममात्रके लिये नेता कर रखा गया है। जरा सा सम्बन्ध भी बहुत दिनों तक यहां रहेगा, ऐसा नहीं मालूम देता। तुर्की-स्वभाव-सिद्ध रण-कुशलता, उदारता आदि गुण हुंगेरियनों में प्रचुर विद्यमान हैं। अपि च मुसलमान न होने के कारण, सङ्गीतादि देवदुर्लभ शिल्प को शैतान का कुहक न सोचनेके कारण, सङ्गीत-कला में हुंगेरियन अत्यन्त पटु हैं और योरप भर में प्रसिद्ध हैं।

पहले हम लोगों को ज्ञान था कि ठण्ढे मुल्कके आदमी मिर्च ज्यादा नहीं खाते;—यह केवल गर्म मुल्कों की बुरी आदत है। लेकिन जैसा—मिर्चका खाना हुंगेरी में शुरू हुआ और रोमानिया, बुलगेरिया आदिमें सप्तममें पहुंचा, उसके पास शायद मद्रासियोंको भी पीठ दिखानी पड़े।

मेरी वाटीका

(ले०—श्री अवन्तविहारी माथुर "अवन्त" ए० आइ एस० ए०)

क्यों मेरी मस्तिष्क वाटिका में करते करते हैं सदा विहार।
अनियन्त्रित होकर निशि दिन यों नित्य नवीन नवीन विचार॥
देती रही सदैव वाटिका मेरी, मुझ को मोद अपार।
नाथ! बनी जाती है क्यों कर, ये चिन्ताओं का आगार॥

चिन्ता शूल निकाल, नाथ!
फिर आनंद पुष्प उगा देना।
अपने कोमल कर से स्वामिन!
उसको पुनः सजा देना॥

काम एक, क्रोध एक।

(लेखक—श्रीगोपालचन्द्र)

पाँच सौ पचास वर्ष पहले की बात है। पंजाब प्रदेश में 'शैल-कोटि' नाम की एक रम्य पुरी थी। वहां का राजा सुशंकितदेव बड़ा प्रतापी और प्रभावशाली शासक था। उसके राज्य में प्रजा अति सन्तुष्ट थी, तथा राजधानी स्वर्गभूमि सी बनी हुई थी। शैल कोटि की यादगार 'स्यालकोट' शहर के रूप में अब भी विद्यमान है, पर उस पुरानी नगरी से इसकी क्या तुलना, उस समय की सी सुख समृद्धि तो आज कहां, उसका शतांश भी नहीं। अस्तु।

राजा सुशंकितदेव के प्रधान मंत्री का नाम दुष्मन्त था। वह ऊपर से तो बहुत भलामानुस, भद्र-पुरुष दीख पड़ता था; परन्तु उसके मनमें जितनी दुर्भावनाएँ भरी हुई थीं, उसका परिचय बहुत कम लोगों को था।

एक दिन की बात है—अपने सुसज्जित राज दरबार में महाराज सुशंकितदेव किसी गहरी चिन्ता में लीन बैठे हैं। मंत्रीगण तथा सभासद लोग भी अपने समुचित स्थानों पर आसीन हैं। महाराज के सामने एक पुरुष हाथ में एक पत्र लिये खड़ा है। उस पुरुष के पहिनावे को देखकर मालूम पड़ता है कि वह कहीं का दूत है। कुछ देर के बाद निस्तब्धता को भंग करते हुए महाराज दूत से बोले—"बनमाली! जाकर मानसिंह से कह दो कि मैं मानसिंह जैसे क्रूर राजा को कुछ भी परवा नहीं करता"। इतना कहते हुए उन्होंने बन-माली से वह पत्र लेकर सभासदों को पढ़कर सुना देने के लिए मंत्री को दिया। मंत्री पत्र को इस प्रकार पढ़ने लगा—

"राजा सुशंकितदेव!

कई बार तुम्हारे अपराध क्षमा किये जा चुके हैं, जो तुमने हमारे आधिपत्य को स्वीकार न करते हुए और हमारे दूतों को कैद करके किये हैं। इस बार यदि तुम अपनी कुमारी 'शशिकला' के साथ ५०००००) रुपया उन सब अपराधों के दण्ड स्वरूप पत्र लानेवाले के हवाले न करोगे, तो राजपाट और समस्त परिवार के साथ तुम्हारा अन्त कर दिया जायगा। मेरे स्वभाव तथा प्रभाव से तुम परिचित ही हो, बस इतना ही बतला देना यथेष्ट है।"

आन्तरिक प्रसन्नता के भाव छिपाते हुए मन्त्री दुष्मंत ने पत्र का पढ़ना समाप्त किया और थोड़ी देर बाद कुछ सोचकर बोला—"महाराज! क्या हर्ज है यदि राजकुमारी का विवाह मानसिंह के साथ कर दिया जाए। वह स्यानी हो गई है, विवाह तो किसी योग्य वर से करना ही होगा। मानसिंह भी कुछ कम योग्य नहीं है। इस सम्बन्ध के होने से सदा की शत्रुता भी जाती रहेगी।" मन्त्री का यह परामर्श सुनते ही क्रुद्ध हो महाराज बोले—"बस, बस घाव पर नमक न छिड़को। क्या हितैषी मन्त्री को इसी प्रकार की सम्मति देनी चाहिये? मानसिंह दुष्ट है, चार रानियों के रहते हुए भी पांचवीं की लालसा करता है। क्या ऐसे अधम के साथ मैं शशि-कला का विवाह कर दूं? आजकल तुम्हारी बुद्धि खराब हो गई है क्या? क्रोध के अधिक आवेश के कारण महाराज इसके आगे कुछ न बोल सके।

बनमाली अभी तक मूर्तिवत् खड़ा खड़ा यह सब कुछ देख सुन रहा था। उससे राजा की यह दशा न देखी गई। वह करुण पर गम्भीर स्वर से बोला—राजन्! आप इतने अधीर न होवें। यदि आप मुझे अपने दर्बार में आश्रय दें तो मैं आपको मानसिंह के दुर्ग के सब गुप्त रहस्य बतला दूंगा, जिससे आप आसानी से उस दुष्ट को नीचा दिखा सकेंगे। मैं भी एक छोटे से प्रान्त का राजा था। पर

दुष्ट मानसिंहने मेरा सर्वस्व अपहरण कर मुझे बन्दी बना इस दशा में पहुंचा दिया। दूत का जीवन बराबर खतरे में रहता है, इसलिये वह वन्दियों से दूत का काम लेता है। मेरी प्रार्थना स्वीकार कर आप मेरे कष्ट को दूर करें। यही मेरा आप से सामह अनुरोध है। आज से मुझे अपना सेवक बनाएं। मैं मानसिंह के अत्याचार से तंग हूं।" वनमाली की विनती सुनकर प्रसन्नता का भाव दिखाते हुए राजा कुछ बोलना ही चाहते थे, बीच में ही मन्त्री बोल उठा—"महाराज! शत्रु-पक्ष के आदमी का कभी विश्वास न करना चाहिये, न जाने किस रूप में, किस समय किस प्रकार की घात या आघात कर बैठे?"

यह परामर्श सुनते ही क्रोधित होते हुए राजा साहब बोले—"दुष्मन्त! तुम प्रधान मंत्री होकर भी क्यों इस प्रकार की बातें कर रहे हो। करने वाले मनुष्य की परख उसके आचार व्यवहार से कर लेते हैं। मन्त्री को चुप करते हुए उन्होंने सर्व सम्मति से वनमाली को सेना के कुछ भाग का नायक तथा शशिकला का प्रसादचन्द के समान द्वितीय अंगरक्षक नियुक्त कर दिया। क्योंकि उन दिनों 'शशिकला' मानसिंह की कुदृष्टि के कारण निहायत खतरे में थी। अस्तु, नियुक्ति के बाद सभा समाप्त हुई, राजा अपने प्रसाद की ओर रवाना हुए एवं और सब अपने अपने स्थान को चले गये।

(२)

जब से वनामाली शशिकला का शरीर रक्षक (Body Guard) नियुक्त हुआ है उसने उसके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। वह आचार, व्यवहार, सुन्दरता आदि किसी भी बात में प्रसादचन्द्र (द्वितीय रक्षक) से बढ़ चढ़ कर न था। पर वनमाली के अद्भुत पराक्रम तथा सहन शीलताने शशिकलापर अपना प्रभाव जमा लिया था। इसके अतिरिक्त वलमाली के प्रति शशिकला के

हृदय में एक प्रकार का अकृत्रिम प्रेम पैदा हो चला था! वह उससे बड़ी घनिष्टता के साथ बातें किया करती थी।

और दिनों की तरह शशिकला और वनमाली आज भी संध्या समय बाग में बैठ कर बातें कर रहे हैं। पर आज शशिकला कुछ उदास है।

वनमाली सिर झुकाए उसके सामने चुपचाप खड़ा है, इस प्रकार थोड़ी देर तक निस्तब्धता रही। पर शीघ्र ही इस नीरवता को भंग करता हुआ वनमाली कहने लगा "प्यारी राजकुमारी। इस तरह दुःखित होकर मेरे दिल को न दुखाओ। ईश्वर पर भरोसा रखो। लड़ाई में मानसिंह का सर्वनाश कर मैं अवश्य ही शान्ति स्थापित करूंगा। यह सुनकर शशिकला अवरुद्ध कण्ठ से बोली। वनमाली! तुम लड़ाई में न जावो। न जाने वहां क्या गुजरे और फिर तुम्हारे दर्शन.........." वह इससे आगे न बोल सकी, उसका गला भर आया।

उसे सान्त्वना देते हुए वनमाली बोला, बस अब विदा दो। समय बहुत थोड़ा है कर्तव्य पालन में हिचकचाहट क्या। इतना कह वनमाली उत्तर की प्रतिक्षा न करता हुआ चला गया। शशिकला भी विचार सागर में डूबी हुई अपने महल की तरफ रवाना हुई।

(३)

शैलकोटी में आज मानसिंह को मारने और उसके राज्यपर अधिकार पाने के उपलक्ष में सर्वत्र खुशियां मनाई जा रही हैं। इसका सारा श्रेय वीर वनमाली को ही है। वह प्रजा तथा राजा के हृदय में स्थान पा रहा है। वनमाली के कार्यों से राजा पहले ही से प्रसन्न थे, परन्तु जब से उसने मानसिंह पर विजय पाई है महाराज उसे आत्मीय को तरह प्यार करने लगे हैं। पर वनमाली का यह आदर और प्रभाव बढ़ता देखकर प्रधान मन्त्री दुष्मन्त का हृदय ईर्ष्या से

जलने लगा। वह स्वयं किसी प्रकार राज्य पर अधिकार करना चाहता था, अब अपने प्रयत्न को निष्फल होते देखकर उसे हार्दिक वेदना होने लगी। वह वनमाली के सर्वनाश का उपाय ढूंढ़ने लगा।

इसके लिए उसने प्रसादचंद्र को अपनी ओर मिलाना, आवश्यक समझा। संयोगवश आज एकान्त में उसके साथ मुलाकात भी हो गई। थोड़ी देर तक इधर उधर की बातें करते हुए मंत्री ने उससे कहा "प्रसादचन्द्र, जबसे वनमाली आया है, राजा तुम्हारी कुछ भी परवाह नहीं करते और उधर शशिकला भी वनमाली से अनुरक्त सी होती जाती है, यदि उन दोनों में इसी प्रकार अनुराग बढ़ता गया और महाराज ने विशेष अनुरक्ति देखकर उन दोनों का परस्पर विवाह कर दिया तो राजमुकुट वनमाली के सिर की शोभा बढ़ायगा और फिर देखना तुम दर दर के भिखारी बनोगे।" मन्त्री के इन शब्दों ने प्रसादचंद्र पर अपना पूरा असर किया और उसने वनमाली को नष्ट करने की ठानली, एवं मन्त्री से इस कार्य में सहायता मांगी।

मन्त्री की मुराद पूरी हुई, उसने सब प्रकार से सहायता देने का निश्चय किया।

दुष्मन्त की राय से प्रसादचन्द्र ने उसी दिन शशिकला को नाव में सैर करने के लिये प्रोत्साहित किया। मन्त्री ने प्रसादचन्द्र से कहा था कि जिस तरह हो इस सैर में वनमाली को समाप्त कर देना। इधर इसी बीच में राजा को अपने वश में करने का उपाय भी उसने सोच निकाला।

प्रसादचन्द्र के बहुत आग्रह से शशिकला सैर के लिए तैय्यार हुई और पिता की आज्ञा लेकर कुछ सहेलियों, नौकरों तथा दोनों रक्षकों को साथ ले उसने उसी दिन यात्रा आरंभ कर दी।

दिनभर ये लोग जल विहार का आनंद लूटते रहे। संध्या समय कुछ गाना बजाना भी हुआ इसके पश्चात् भोजनादि से निवृत्त हो कुछ गप्प शप्प करके यह लोग सोने के लिए अपने अपने विस्तरों पर चले गये।

सब के सो जानेपर प्रसादचंद्र को अपने उस कामकी फिक्र हुई। वह उठकर शशिकला के विस्तरे के समीप पहुंचा और जेब से एक शीशी निकाल कर उसकी नाक के पास ले गया। वह सोई हुई थी और भी बेसुध हो गई। प्रसादचन्द्र ने पहले से ही प्रस्तुत की हुई डोंगी में शशिकला को उसी अचेत दशा में डाल दिया। और वनमाली की तरफ चला। पर इसी बीच में वह जाग चुका था, और उसके इस नीचतापूर्ण कार्य को देखकर झपटा, यह दोनों प्रतिद्वन्दी लड़ते लड़ते नदी में गिर पड़े।

(४)

शशिकला को सैर के लिये गये हुए आज पूरे तीन दिन व्यतीत हो गये पर उसका कोई समाचार नहीं मिला इस कारण राजा बहुत हो व्याकुल हैं। दरबार में जाने पर भी वे कोई कार्य नहीं करते। और दिनभर इसी चिन्ता में निमग्न रहते हैं। इसके उपरन्त उधर मन्त्री ने भी अपना जाल बिछाया हुआ है।

रूपवती वेश्या को उसने सिखा पढ़ा कर राजा को अपने काबू में करने के लिये नियुक्त किया। एक दिन वह प्रातःकाल नौकरी का बहाना करके महाराज के पास आई। उसकी अनुपम रूपराशी को देखकर महाराज की शान्त विषय वासना भड़क उठी और उन्होंने उसे अपने पास 'सेविका' बनाकर रख लिया। देखते देखते वेश्या ने राजापर अपना इतना रंग जमा लिया कि उसीकी ना में ना और हां में हां होने लगी।

आज संध्या समय ललिता (वेश्या) राजा की बांई जंघापर बैठी शराब के गिलास को कभी अपने और कभी राजा के मुंह से

लगाती है। कुछ ही देर में राजा शराब के नशे में चूर हो गये उन्हें उचित, अनुचित का भी ज्ञान न रहा। राजा के सामने एक कागज पड़ा है। नशे की अवस्था में ललिता का अधरामृत पान कर ज्योंही वे उस कागज़ पर हस्ताक्षर करने लगे त्योंही शशिकला आ पहुंची और दाल में कुछ काला जान, कमर से कटार निकालती हुई समीप पहुंच गई।

ललिता ने शीघ्रता से कागज़ उठा लेना चाहा मगर उसे डांटते हुए फुरती से शशिकला ने उठा लिया और पढ़ने लगी। पढ़ते ही वह सन्न रह गयी। कागज में लिखा था—"मैं अपने राज्य का उत्तराधिकारी मंत्री पुत्र श्याम को बनाता हूं और ललिता, प्यारी ललिता को १०००००) रुपये की खिलत दी जाय।

कागज को कमर में लटकते हुए बटुए में डालकर शशिकला ने ताली बजाई। ताली बजते ही दो पुरुष सैनिक वेश में सुसज्जित आ पहुंचे और राजपुत्री की आज्ञा से ललिता को पकड़कर उसी समय कारावास में ले गये।

(५)

मन्त्री की दुष्टता अच्छी तरह प्रकट हो गई आज सुबह से ही न्यायालय में भारी भीड़ लगी है, प्रसादचंद्र और वनमाली में परस्पर सुलह हो गई है! वह दोनों इकट्ठे ही दरबार में पहुचे हैं। प्रसाद-चंद्र मन्त्री के विपक्ष में गवाही देगा, मन्त्री कीं कलई खोलेगा।

गवाहिया हुई, बयान सुने गये, विचार होकर दुष्ट मन्त्री को आजन्म देश निकाले का दण्ड मिला। निर्णय से प्रसन्न हो कर लोग अपने अपने घरों को प्रस्थान कर गये।

राजा के मन में बन में जाकर रहने की इच्छा हुई। उसने शशि-कला का विवाह धूमधाम से वनमाली के साथ कर दिया, विवाह का प्रबंध प्रसादचंद्र ने किया, वह सबसे अधिक प्रसन्न है। वनमाली

राजा हुए, प्रसादचंद्र मंत्री बने, राजा वन को गये, मन्त्री देश बहिष्कृत हुआ, वेश्या कारावास में पड़ी सड़ती रही।

वनमाली अब भी शशिकला का 'अंगरक्षक' है। दोनों दम्पती राज काज चलाते हुए सुख से जीवन व्यतीत करते हैं। कभी कभी विनोदार्थ उन पुरातीत बातों का भी स्मरण कर लेते हैं।

गीता तत्त्व।

(अनुदित)

"सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।"

वे जगन्नियन्ता हैं, उनकी जो इच्छा है, वही हम लोगों की इच्छा होवे। मैं और कुछ नहीं चाहता। इसी भावको जो अपने मनमें दृढ़ रखते हैं वे ही इस महाशक्ति के साथ-साथ चलते हैं। उन्हींके अहंकार नष्ट होकर, उनमें ज्ञान का संचार होता है। किन्तु अधिकतर समय-समयपर हम लोगों के अन्दर इसके विपरीत ही भाव आते रहते हैं। विश्व-इच्छा के साथ न रहनेपर विषय-वासना के लिये परस्पर संघर्षण करते हैं। देखो, संसार परिवर्तनसील है, यही इसका नियम है, यह सभी जानते हैं, किन्तु तौ भी हम लोगों में हरएक की इच्छा यही रहती है कि, जिससे यह अनित्य शरीर चिरकालतक रहे। हम लोगों के प्रेम में भी ऐसी होती है। जिससे प्रेम रखते हैं, हम चाहते हैं कि उसके शरीर और मनको भी अपने काबू में रखें। इसीलिये मोह पैदा होता है। अन्यथा सत्य प्रेम भगवान का एक अंश है, उससे मोह की उत्पत्ति नहीं होती। प्रकृत प्रेम होनेपर प्रेम पात्र को अनन्त स्वाधीनता देती हैं, अपने वश में नहीं रखने चाहता है। इस तरह से मानव वासना के वशीभूत होनेपर विश्व-इच्छ के विपरीत में अनित्य की नित्यकाल धर रखना चाहता है। इसपर विशेष ध्यान रखना।

ईशपकी एक कहानी इसी प्रसंगपर याद आती है। "एक गरीब बुड्ढा एक दिन लकड़ी का एक बोझा सिरपर लेकर बड़ा कष्ट पाता था। गरमी का समय था, बोझा भारी था, वृद्ध में थोड़ीसी शक्ति थी। बूढ़ा कुछ दूर जाकर घाम से दुखित होकर एक जगह विश्राम करने के लिये पड़ गया और अपने अदृष्ट को धिक्कारने लगा। कहता था—मृत्यु भी हमें इस अवसरपर भूल गयी है! इसी समय विकटाकार मृत्यु उसके सन्मुख उपस्थित हो गयी और बोली; रे बूढ़े! तुम किस लिये मुझे पुकारते हो? बूढ़ा सन्न हो गया। भय से "मैं तो......मैं तो......करता हुआ कहने लगा, महाशय, बोझा भारी है। अकेले इसे ले नहीं चल सकता। इसलिये उसे ही ले चलने के लिये आपको याद किया था।" हम लोगों को भी अनित्य विषय छोड़ने में ठीक इसी तरह से होते हैं।

गीता का आरम्भ बड़ा ही रमणीक है। दो दल युद्ध के लिये सन्नद्ध है—दोनों दलों में बड़े-बड़े वीर हैं—सबके पास एक शंख था, शंखों की आवाजों से योद्धाओं में स्फूर्ति आ जाती थी। चारों ओर से शंख-निनाद सुनाई पड़ रहा था। इसी समय अर्जुन कहते हैं, दोनों सेनाओं के बीच में मेरा रथ ले चलो, ताकि इसे देख लूं; मेरे साथ कौन युद्ध करेगा। उस समय भी उसमें मोह नहीं था साहस था। श्रीकृष्ण ने वैसा ही किया। अर्जुन ने देखा, विपरीत दल में है इच्छामृत्यु भीष्मपितामह, जिससे अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखे थे वही आचार्य द्रोण, अमर कृपाचार्य, समयोद्धा कर्ण प्रभृति वीर आये थे। बहुतेरे टीकाकार कहते हैं कि अर्जुन इन योद्धाओं को देखकर भयभीत हो गये थे। कारण कि भीष्म पितामह की इच्छामृत्यु, उनकी परशुराम के साथ की विजय, सिन्धुराज के पुत्र जयद्रथ की शिव से वर प्राप्त की कहानी और कर्ण के अतुल पराक्रम की बातें उन्हें अच्छी तरह मालूम थी। इससे यह कहा जाय कि अर्जुन अवश्य भयभीत

हो गये थे। इसके प्रमाण के लिये एक और भी प्रसंग आता है; एकादश अध्याय में जब अर्जुन भगवान के विश्वरूप को देखे हैं, तभी द्रोण, भीष्म, जयद्रथ और कर्ण को मृतवत देखे हैं। इसीसे अर्जुन संग्राम में अपने पक्ष की जीत, जय-पराजय आदि सभी घटनाएँ, किसकी शक्ति बढ़ी हुई है, इत्यादि समझ गए थे। इस समय एक प्रश्न उठ सकता है। समस्त गीता शास्त्र सुनने पर भी अर्जुन कुरुक्षेत्र युद्ध के भीषण हत्याकाण्ड निश्चिन्त मन से किये और देखे। इससे धर्मभाव या इससे विपरीत भाव किस परिचय से पाया गया? अतः गीता ग्रन्थ में अर्जुन को समर में प्रवृत्त करने के लिए अनेक रोचक बातें हैं और भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन को जातिवध रूप इस नृशंस कार्य में प्रवृत्त करते, मिथ्या को सत्य करा देते हुए कुछ भी कुण्ठित नहीं हुए। मनुष्य वध करना या जाति बान्धवों का वध करना कौनसा बड़ा कार्य? इसके उत्तर में कहा जा सकता है, कि अगर उद्देश्य बड़ा हो, तब मनुष्य वध करना ही सत्य, धर्म्म और यश लाभ है। उद्देश्य जानकर ही अच्छा और बुरा जाना जा सकता है। स्वदेश रक्षा के लिए युद्ध में नर हत्या, स्त्रियों पर अत्याचार करने वाले अत्याचारियों को प्राणदण्ड आदि कार्य्य महत कार्य्य कहे जायेंगे।

चित्तौर अवरोध के समय स्त्रियों के केश काटे गए थे, उससे बनी हुई रस्सी से शत्रुवों के मारने के लिए धनुष बनी थीं। नरहत्या के उद्देश्य से ही क्या देवी-पूजा की स्वतः इच्छा हुई नहीं पाई जाती? किन्तु अपने सुख के लिए नरहत्या का कार्य्य, पतित मन और निष्ठुर पिशाच के समान होता है। अतएव छोटा-बड़ा, अच्छा-बुरा, कर्म्म में ही है, किन्तु कर्त्ता का उद्देश्य लेकर विचार होता है।

मनकी गति ही आश्चर्य जनक है! एक वार में तीन चार विपरीत भाव भी एक समय सम्मिलित होकर मनुष्य के मन में उठते हैं, हमलोग उसे पकड़ नहीं सकते। द्रोणाचार्य, भीष्म आदि आत्मीय

स्वजनों को युद्ध में हत्या करनी होगी, अर्जुन के मनमें कल्पनायें उठी थीं। यह मोह दोनों रूप से हो सकता है, भय से भी और प्रेम से भी। प्रेम मोह पैदा करता है, और यह मोह अनेक समय दुर्बलता लाकर मनुष्य को कर्त्तव्य और सत्य पथ से भ्रष्ट कर देता है। युद्ध के पहिले अर्जुन सत्य के लिये भयभीत हुये थे, स्वार्थ के लिये नहीं ; इन्होंने केवल पाँच ग्राम ही लेकर सन्धि करना चाहा था। जिससे युद्ध न करना पड़े, इसके लिये कितना सचेष्ट थे। जब देखे, युद्ध न करने से अन्याय, अविचार और अधर्म्म को आश्रय देना पड़ेगा, तभी सत्य के लिये युद्ध करने पर खड़े हुए। अत्याचार का निवारण करना ही क्षत्रियों का धर्म्म है। जहां अन्याय, अत्याचार देखेंगे, वहां उनका प्रतिकार करेंगे। इस संसार में सभी एक सूत्र में बंधे हैं। जब तुम्हें लगी, तो मुझे भी। हमारे ऊपर अत्याचार होते देखकर अगर तुम चुप हो, और मन में कहते हो, जो हो, हमारे ऊपर तो नहीं है ; दूसरे से हमारा क्या ? ऐसा होनेपर तुम विषम भ्रम में गिरे हो। हमारे साथ ही साथ तुम्हारे ऊपर भी अत्याचार हुआ, समझना होगा। तुम्हारे मनकी सद्वृत्ति के ऊपर अत्याचार हुआ। आज स्वार्थपरता से अन्धा होकर अपनी इच्छा से अन्याय का प्रतिकार नहीं किए, तो कल जब तुम पर अत्याचार होगा, तब तुम्हारे लिए दूसरे भी उसका प्रतीकार न कर सकेंगे। इसी तरह से धीरे २ अवनति के मार्ग की ओर आगे बढ़ोगे। युद्ध भूमि में अर्जुन को भी मोह हुआ था। तभी कहे थे, इस सुख की और आवश्यकता नहीं है। आत्मीय बान्धव ही यदि सभी मर गए तो राज-पाट लेकर क्या करेंगे। श्रीकृष्ण ने देखा, अर्जुन अपना उद्देश्य भूल गए हैं, कोरे भय से अपने को छिपाते हैं। मनमें कहते थे, अपने भक्तों के लिए लड़ाई करने को खड़े हुये हैं। वे जिस सत्य के लिए खड़े हुये थे, वह दूसरों के ऊपर होते हुए अत्याचारों के

प्रतिकार स्वरूप ही था, कर्त्तव्य पालन करने के लिए ही ; अर्जुन उसे भूल गया है। पहिले ही वक राक्षस का वध आदि के प्रसंग में जहां जहां उन्होंने अन्याय अत्याचार देखा था, वहां ही धर्म समझकर उसका प्रतिविधान किया था। अर्जुन सभी भूल गया है, वह मनमें सोचता है, राज्य पाने के लिए ही युद्धभूमि में खड़े हुये हैं। संसार में अनेक समय यह बात हम देख रहे हैं, रूप के मोह, सोने चाँदी के मोह में व्यस्त हो उद्देश्य को भुलाते हुए मनुष्य थककर बैठ जाता है। अगर साधन हैं, तो फिर भी वे उद्देश्य आगे आजाते हैं। श्रीकृष्ण वही देखकर प्रथम दो श्लोक में अर्जुन को विशेष शिक्षा देते हुये कहे थे।

"कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्ज्जुन ॥
क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्व्वल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥"

"हे अर्जुन ! इस समय तुम में कहां से मोह आ गया ? तुम्हारा अनार्योचित, लोगों के स्वर्ग के मार्ग में बाधा देनेवाला, इस प्रकार का मोह क्यों आया ? हे अर्जुन ! यह क्लीवता छोड़ो। यह हृदय की दुर्बलता तुम्हारे समान शक्तिमान पुरुष में शोभा नहीं पाती। इसे दूरकर हटावो, उठो, युद्ध करो।" इससे हम लोगों को एक उपदेश मिल रहा है कि मोह दुर्बलता लाना एक भारी पाप है। मन के सम्बन्ध में जिस प्रकार है, उसी तरह शरीर के सम्बन्ध में भी है। आजकल के लड़के पढ़ने के ऊपर ही लगे रहकर शरीर की तरफ़ से उदासीन हो जाते हैं। यह जो एक पाप है, ऐसी मेरी धारणा निश्चित है। विश्वविद्यालय लड़कों की शरीर पर कुछ ध्यान नहीं रखता। लड़के अपने हाथ-पैर के व्यवहार को एकबार बिलकुल ही भूल जाते हैं। परिणाम यही निकलता कि, उन्हें अनेक कामों में अक्षमता ही रहती है। शरीर के सम्बन्ध में ध्यान रखने की बहुत जरूरत है।

ऐसा न रखनेपर दुर्बलता आ जाती है। शरीर और मनके सम्बन्ध में जो अत्याचार करेंगे, उसका फल उन्हें भोगना ही पड़ेगा। अर्जुन उसके बाद में कहे थे:—"भीष्म के साथ मैं किस तरह युद्ध कर सकूंगा ? गुरु द्रोण को किस तरह मारूंगा ? उसके बाद ही देखते हैं, मुख में जो धर्म-भान करते हैं, मनमें वह नहीं है। और कहते हैं—

"कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ़चेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्"

"मुझ में कार्पण्य दोष आगया है, मैं दया का पात्र हूं। (कार्पण्य शब्द का अर्थ दया का पात्र ही जानकर व्यवहृत हुआ है) मन बन्धन में आ गया है। इसीसे प्रार्थना करता हूं, अनुनय करता हूं। मैं आपका शिष्य हूं; मुझे शिक्षा दीजिये।"

उस समय श्रीकृष्णजी सोचा, कि अर्जुन के मनमें किस जगह गोलमाल हुआ है, उसे पकड़कर कहते हैं—

"अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।"

"तुम पण्डितों की तरह बातें करते हो, किन्तु वे जिसके लिये शोक नहीं करते, उसके लिए तुम शोक करते हो।" यही दो बातें अर्जुन को चोट पहुंचाई। पण्डितों की क्या कथन हैं? कौनसा नित्य है? शरीर भी तो परिवर्त्तनशील ही है! पण्डित इस शरीर के लिए कभी शोक नहीं करते, तुम शोक करते हो। अतएव तुम्हारा मन और मुख एक नहीं है; तुम पण्डित नहीं। हम भगवान श्रीकृष्ण को कई बातें से धर्म्मराज्य के दो आवश्यक प्रधान चीजें पाते हैं। पहिले किसी प्रकार से मन में दुर्बलता नहीं आनी चाहिये और दूसरा यह कि मन और मुख एक करना चाहिये। दुर्बलता आने से उद्देश्य की पूर्त्ति बहुत दूर है। अगर ये दोनों उपदेश यदि जीवनभर पालन किया जाय, तो उन्नति होती है, जो इसका पालन करते हैं वे संसार के बाहर या भीतर किसी परिमाण में उसके द्वारा कार्य्य सिद्ध करते हैं।

मणिमाला

आत्मा का स्वरूप जन्म से रहित, निद्रा से रहित, स्वप्न से रहित, नाम से रहित, रूप से रहित, सर्वदा प्रकाशरूप और सर्वज्ञानरूप है। उसमें कोई भी उपचार नहीं होता। —उपनिषध

जो अपने-आप प्राप्त होनेवाली किसी भी वस्तु या घटना में सन्तुष्ट है, जो हर्ष-शोक, सुख-दु:खादि द्वन्द्वों से मुक्त है, जो किसीसे भी कभी मत्सरता नहीं करता और सिद्धि असिद्धि में समभाव से रहता है वह कर्म करके भी उनके फल से नहीं बँधता।

—श्रीमद्भगवद्गीता।

जगत् में दो ही परमानन्द में रहते हैं—(१) मूर्ख और उद्यम-रहित बालक और (२) भगवत्-प्राप्त गुणातीत मुक्त पुरुष।

—श्रीमद्भागवत।

जिस परमात्मा से सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं और जिसमें सब लीन हो जाते हैं तथा जो सब प्राणियों का पालन करता है उस वेदप्रतिपादित ज्ञेय ब्रह्म को जो नहीं जानते, वे बार-बार जन्म-मरण को प्राप्त होते हैं। —महाभारत।

जबतक धन पैदा करने की ताक़त रहती है, तभीतक घर के लोग प्रसन्न रहते हैं, जब बुढ़ापे में शरीर जर्जर हो जाता है, तब कोई बात भी नहीं पूछता। —श्रीशंकराचार्य।

जब प्रलयाग्नि से सुमेरु पर्वत भी दग्ध होकर गिर पड़ता है, बड़े-बड़े मगर-मत्स्योंके निवास स्थान महासमुद्र भी सूख जाते हैं, पर्वतोंके पैरोंसे दबी हुई पृथ्वी भी नष्ट हो जाती है, तब हाथी के कान की कोर के सदृश चञ्चल यह मनुष्य तो किस गिनती में हैं?

—भर्तृहरि।

जो बड़ा हो उसे सेवक बनना चाहिये। क्योंकि जो अपने को बड़ा मानता है, वह छोटा बनाया जाता है और जो छोटा बनता है वह बड़ा बनाया जाता है। —ईसामसीह।

उन्नति के सात नियम हैं—श्रद्धालु होना, पापकर्म से लजाना, लोकापवाद से डरना, विद्वान् होना, सत्कर्म करने में उत्साह रखना, स्मृति जाग्रत रखना और प्रज्ञावान् बनना। —बुद्धदेव।

मन, वाणी और शरीर से सम्पूर्ण संयम से रहने का नाम ही ब्रह्मचर्य है। —महावीर स्वामी।

संसार से अलग रहना ही उत्तम है, यहाँ के सम्बन्धों की जड़ में दुःख और कष्ट भरा है। जिसने अपना जीवन चुपचाप बिता दिया, सच तो यह है कि उसीका जीवन उत्तम बीता। —जौक।

जबतक मनुष्य अपने आत्मा को नहीं पहचानता—यह नहीं जानता कि मैं वास्तव में क्या हूं, कौन हूं और संसार में किस लिये आया हूं, तबतक उसका सारी दुनिया पर विजय प्राप्त कर लेना भी व्यर्थ ही है। —राल्फ वाल्डो ट्राइन।

आनन्द और अन्दर की शान्ति प्रभुमय जीवन के फल हैं, परन्तु जो जीव हृदय से भगवान् के शरण नहीं होता, उसको इनकी प्राप्ति नहीं होती। —मोलिन्स।

मेरा वश चले तो मैं अपनी निन्दा करनेवालों को इनाम दूँ, क्योंकि उनके द्वारा की जानेवाली निन्दा से मेरा हित ही होता है।

—अहमद।

जिसके मन में कभी क्रोध नहीं होता और जिसके हृदय में रात-दिन राम बसते हैं, वह भक्त भगवान् के समान ही है।

—रैदास।

विविध विषय।

(संवाद)

गत फरवरी महीने में भारतवर्ष तथा भारतवर्ष के बाहर नाना स्थानों में पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्दजी महाराज की जन्मतिथि के उपलक्ष में उत्सव मनाया गया। इस उपलक्ष में बंगलोर में जो सभा हुई थी, उसमें, मैसोर राज्य का दीवान, जो एक मुसलमान सज्जन हैं, पधारने की कृपा की थी और श्रीपरमहंस रामकृष्णदेव तथा स्वामी विवेकानन्दजी के समन्वयवाद की प्रशंसा करते हुए कहा था कि एक मात्र यह भाव ही संसार में शान्ति की स्थापना कर सकता है। दिल्ली में जो सभा हुई थी, उसके सभापति भारत के प्रसिद्ध वक्ता श्रीयुत जयकर महाशय थे। आपने कहा था, कि व्यक्तिगत भाव से मेरा जो कुछ भी मत हो, जाति के कल्याण के खयाल से मैं स्वामी विवेकानन्दजी द्वारा प्रचारित कर्मयोग ही उपयुक्त और सर्व श्रेष्ठ समझता हूं। इसी तरह अन्यान्य सभाओं के प्रमुख वक्ताओंने भी श्रीपरमहंसदेव तथा श्रीस्वामीजी के उद्देश्यों की प्रशंसा की।

बिदाई।

मनुष्य चाहता है कुछ, होता है कुछ और। ईश्वर की इच्छा ही प्रबल है। वे ही जब चाहते हैं इस संसार की सृष्टि, स्थिति और लय करते हैं। क्यों करते हैं, वह वही जानते हैं। इसी सनातन नियम के अनुसार समन्वय की भी उत्पत्ति हुई, और देखते ही देखते उसे आठ वर्ष बीत भी गये। इस थोड़े से समय में उसने जनता की कैसी और कितनी सेवा की, इसके विचार का भार हमपर नहीं, समन्वय के पाठकों पर है। हमें तो सिर्फ अपनी त्रुटियां ही दीख पड़ती हैं। अस्तु, अब हमें यह कहते हुए बड़ा खेद होता है कि इस अंक के साथ समन्वय के जीवन का अन्त हो जाता है। शुरू से ही हमें ग्राहकों की कमी का सामना करना पड़ा, और इसी कारण हमें भारी रकम का घाटा सहना पड़ा है। और और कई असुविधाओं

को भी झेलना पड़ा। अन्त में हमने समन्वय का प्रकाशन बन्द कर देना ही निश्चय कर लिया। जब हमने पहले पहल इसे निकाला उस दिन से आज का कितना अन्तर है! तब आशा की उमंग थी, अब कठोर वास्तव की अभिज्ञता है। पर प्रयत्न करके असफल होना और प्रयास न करना, इन दोनों में गहरा पार्थक्य है। इसीलिये समन्वय को बन्द करते हुए भी, हमें अपनी छोटी सी शक्तिभर प्रयत्न करने का सन्तोष है। हमारा कर्म में अधिकार है, फल में नहीं। जान पड़ता है कि हिन्दी संसार अभी इस ढंग के धार्मिक पत्र के लिये तैयार नहीं हुआ। पर वह दिन दूर नहीं जब हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा बनेगी, और उस समय ऐसे पत्र की मांग देश में अवश्य होगी। क्योंकि उस नवीन जागृति में धर्म-विचारों पर कहीं अधिक ध्यान दिया जायगा और हमारा पूर्ण विश्वास है कि उस समय समन्वय नवीन रूप में फिर से भारतीय जनता के सामने उपस्थित होगा। इस दृष्टि से समन्वय का अदर्शन होना मृत्यु नहीं, वरन पुनर्जीवन के लिये तैयारी है।

गत आठ वर्षों में हमें अनेक महानुभावों से मिलने का सौभाग्य हुआ था। उन्होंने तरह तरह की मदद देकर हमारा काम बहुत कुछ हलका कर दिया। उनकी इस अनमोल सेवा के लिये हम सदा उनका आभार मानेंगे। इसका प्रतिदान देने योग्य कोई चीज हमारे पास नहीं है। इसलिये हम केवल भगवान श्रीरामकृष्णदेव और श्रीमत् स्वामी विवेकानन्दजी के कमल-चरणों में प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें सदा सुख और शान्ति में मग्न रक्खें। समन्वय के ग्राहकों और पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे हमारी त्रुटियां क्षमा करें, और यदि समन्वय से उन्हें कुछ भी लाभ पहुंचा हो, किसी भी सत्य का पता उन्हें लगा हो, तो वे उसे कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न करें।

निवेदक

सम्पादक, समन्वय।